[ राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर द्वारा प्री-यूनीवर्सिटी कक्षाओं के लिए स्वीकृत पाठ्य-पुस्तक ]

# कथा संगम

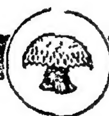
हिन्दी के प्रतिनिधि कहानीकारों की श्रेष्ठतम कहानियों का संकलन



प्राक्कथन लेखक
डॉ० रांगेय राघव



सम्पादक
मनोहर प्रभाकर एम. ए, 'साहित्यरत्न'



कल्याणमल एण्ड सन्स
त्रिपोलिया बाजार जयपुर

प्रकाशक : जयपुर

## सूचना

[ प्रकाशक से लिखित अधिकार प्राप्त किये विना, इस पुस्तक की कुन्जी आदि छपवाना वैधानिक अपराध समझा जावेगा। ]

मूल्य २.५० मात्र

प्रकाशक
मुरलीमनोहर गोयल
संचालक
कल्याणमल एण्ड सन्स
त्रिपोलिया बाजार, जयपुर

मुद्रक : अजमेरा प्रिंटिंग वर्क्स, जयपुर।

# प्राक्कथन

पाठकों की बढ़ती हुई रुचि को ध्यान में रखते हुए हिन्दी के प्रतिनिधि कहानी–लेखकों की रचनाओं के अनेक संग्रह इन दिनों प्रकाशित हुए हैं। 'कथा संगम' भी ऐसे संग्रहों की शृंखला में एक महत्वपूर्ण कड़ी है। संपादक ने जहाँ रचनाओं के चयन में कृति की श्रेष्ठता का पूरा ध्यान रखा है, वहाँ महिला कहानी-लेखिकाओं और राजस्थान के लेखकों को भी समुचित प्रतिनिधित्व प्रदान किया है। अधिकांश कहानीकारों के बारे में ख्यातनामा आलोचकों के मत उद्‌धृत कर देने से पुस्तक की उपादेयता और भी बढ़ गई है। आशा है यह संग्रह सामान्य पाठकों और विद्यार्थी वर्ग दोनों ही के लिए पर्याप्त उपादेय सिद्ध होगा।

—डॉ० रांगेय राघव

# इस पुस्तक के बारे में

आधुनिक हिन्दी कथा-साहित्य को जिन श्रेष्ठ कृतिकारों की लेखनी ने समृद्धि और गौरव प्रदान किया है, उनमें से केवल तेरह की प्रतिभा का प्रसाद 'कथा संगम' में संग्रहीत है। पुस्तक के आकार की सीमा ने यदि विवशता उत्पन्न न की होती, तो हिन्दी के लगभग सभी प्रतिनिधि कथाकारों के कृतित्व का समावेश इस संकलन में करना हमारा अभीष्ट था। फिर भी अपनी सीमाओं में रहते हुए इस संग्रह में जो कुछ हम दे पाये हैं, आशा है पाठकों को वह अवश्य रुचिकर और हृदयग्राही प्रतीत होगा।

—सम्पादक

## आभार-प्रदर्शन

इसमें संगृहीत लेखकों एवं सम्बन्धित प्रकाशकों के प्रति हम उनकी रचनाओं को उद्धृत करने की स्वीकृति देने पर कृतज्ञता प्रकट करते हैं।

—प्रकाशक

# अनुक्रमणिका

# राष्ट्रीय-गीत

जन-गण-मन अधिनायक जय हे,
भारत – भाग्य – विधाता ।

पंजाब, सिन्धु, गुजरात, मराठा,
द्राविड़, उत्कल, वंग,

विंध्य, हिमाचल, यमुना, गंगा,
उच्छल – जलधि –तरंगा,

तव शुभ नामे जागे,
तव शुभ आशिष मांगे,
गाहे तव जय गाथा ।

जन–गण–मंगल–दायक जय हे,
भारत – भाग्य – विधाता ।

जय हे ! जय हे !
जय जय जय, जय हे ।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर

# कहानी की कहानी

साहित्य की किसी भी विधा की ऐसी परिभाषा देना, जो अपने आप में पूर्ण हो, बड़ा कठिन कार्य है। यही बात कहानी के बारे में भी कही जा सकती है। भिन्न-भिन्न विद्वानों ने कहानी की भिन्न-भिन्न परिभाषा दी है।

## कहानी की परिभाषा

डॉ० रघुवीरसिंह डी० लिट० के मतानुसार 'कहानी, गल्प, लघु-कथा अथवा आख्यायिका आदि विभिन्न नामों से एक ही प्रकार के साहित्य का निर्देशन होता है। आज की कहानी का स्वरूप बहुत ही विकसित हुआ है और उसकी कला एवं प्रकारों में इतनी अधिक विभिन्नताएँ आ गई हैं कि उन सबको एक ही परिभाषा के सुनिश्चित घेरे में बांध सकना अत्यन्त कठिन है। प्रत्येक साहित्यिक, आलोचक या लेखक ने अपने-अपने विशिष्ट दृष्टिकोण से कहानी को परिभाषा की है। गद्य–साहित्य को आधुनिकतम रूप प्रदान करने वालों में अमेरिका के सुप्रसिद्ध गल्प लेखक एडगर एलिन पो प्रमुख हैं। उन्होने कहानी की परिभाषा इस प्रकार की थीः—

'लघु-कथा एक ऐसा आख्यान है, जो इतना छोटा हो कि एक ही बैठक में पूरा पढ़ा जा सके, जो उसके पाठक पर किसी एक प्रभाव को ही उत्पन्न करने के लिए गया हो और ऐसा निर्दिष्ट प्रभाव उत्पन्न करने में सहायक न हो सकने वाली सारी बातें जिसमें वे छोड़ दी गई हों तथा जो स्वतः सर्वथा सम्पूर्ण हो।'

हिन्दी के सुप्रसिद्ध कहानी लेखक प्रेमचन्दजी के मतानुसार कहानी की रूपरेखा निम्नलिखित होती हैः—

'गल्प एक ऐसी रचना है, जिसमें जीवन के किसी एक अंग या किसी एक मनोभाव को प्रदर्शित करना ही लेखक का उद्देश्य रहता है। उसके चरित्र, उसकी शैली, उसका कथा-विन्यास, सब उसी एक भाव को पुष्ट करते हैं। उपन्यास की भांति उसमें मानव-जीवन का सम्पूर्ण तथा बृहद् रूप दिखाने का

प्रयास नहीं किया जाता। न उसमे उपन्यास की भांति सभी रसों का सम्मिश्रण होता है। वह ऐसा रमणीय उद्यान नहीं जिसमे भांति-भांति के फूल, बेल-बूटे, सजे हुए है, बल्कि यह एक ऐसा गमला है, जिसमें एक ही पौधे का माधुर्य अपने समुन्नत रूप मे दृष्टिगोचर होता है।'

श्यामसुन्दरदास जी ने नाटकीय तत्वोंको प्रमुखता प्रदान करते हुए लिखा है कि 'आख्यायिका एक निश्चित लक्ष्य या प्रभाव को लेकर किया हुआ नाटकीय आख्यान है।'

इसी प्रकार आख्यायिका की अनेक परिभाषाएँ की जा सकती है, परन्तु अपनी विकासशीलता के कारण कहानी के इतने अधिक रूप-रंग सामने आये हैं कि इन सभी परिभाषाओं मे निर्दिष्ट विशेषताओं से समावृत होते हुए भी वह सर्वथा उनमे वर्णित आदर्शो या लक्षणो के भीतर नही समा सकती।

## कहानी के तत्व

साधारणतः वृतात्मक साहित्य के ६ तत्व होते हैः—कथावस्तु, पात्र, कथोपकथन, वातावरण (देशकाल), शैली और उद्देश्य। कुछ विद्वान कहानी के लिए कथावस्तु, पात्र तथा कथोपकथन को ही प्रधानता देते है और अन्य कुछ लेखकों ने इनमे से भी किसी विशेष को अपनाया है जैसे अमेरिकन कहानी लेखक 'पो' ने अपनी कहानियों मे घटनाओं का ही चित्रण किया है। स्टीवेन्सन ने चरित्र चित्रण और हंगरी ने कथावस्तु का। यह ठीक है कि उपरोक्त किसी भी एक तत्व को लेकर कहानी लिखी जा सकती है तथापि एक तत्व को प्रधान और शेप दो को सहायक न बनाने पर कहानी मे कुछ अवश्य रह जाता है। तीनों तत्वों के साथ-साथ कथोपकथन, वातावरण तथा शैली का चातुर्य तत्व कहानी के ढाचे मे रक्त मज्जा ढाल देने के समान है। हम यहाँ प्रत्येक तत्व के विषय मे तनिक विचार करेंगे।

### कथावस्तु

कहानी में वर्णित घटनाओ अथवा कहानी के वर्णित तत्व को कथावस्तु कहते है। कथावस्तु कहानी का प्राण है अतएव इसमे इतनी शक्ति होनी

चाहिए कि सारी कहानी को अपने समीप खिंचा रख सके। कथावस्तु में सन्निहित घटनाएँ शृंखलाबद्ध होनी चाहिए और कोई घटना ऐसी भी न होनी चाहिए जो अन्य घटना का विरोध करती हो। उसके प्रत्येक अङ्ग के विस्तार में साम्य होना चाहिए जिससे कि प्रत्येक अंग को अपनी अभिव्यक्ति का पूरा-पूरा अवसर मिल सके। साधारण बातों को भी लोकोत्तर बना देना कथावस्तु का धर्म है। घटनाओं का क्रम स्वाभाविक होना चाहिए तथा कथावस्तु का परिणाम घटनाओं तथा परिस्थितियों के अनुकूल होना चाहिए।

## पात्र

कथावस्तु को निर्दिष्ट स्थान तक ले जाने में प्रयत्नशील रहने वाले व्यक्ति पात्र कहलाते हैं। कथावस्तु कहानी का माधुर्य है तो उसका रसास्वादन कराने वाले पात्र ही होते हैं। पात्र कथावस्तु के संचालक है। अतः इन्हें सदा कथानक के अत्यन्त समीप ही खड़ा होना चाहिए। ऐसा न हो कि पात्र संकुचित होकर कथावस्तु से बहुत परे खड़े रहे, उससे दूर भागने का प्रयत्न करते रहें। उन्हें कथानक में लीन होना है, उस तल्लीनता की मात्रा जितनी अधिक होगी कहानी उतनी ही सफल होगी। कहने का अभिप्राय यह नहीं कि पात्र अपना निजी व्यक्तित्व न रखें सर्वथा स्पष्ट हो जावें। अनायास ही इनका खुल जाना कहानी की असफलता है। पात्र दृश्य होते हुए भी अदृश्य तथा प्रस्तुत होते हुए भी अप्रस्तुत से लगने चाहिए तभी कहानी में एक रहस्य उत्पन्न होगा और वही रहस्य कहानी का आनन्द बन सकेगा। पात्र अस्पष्ट रहें और जब स्पष्ट हों तो उस अभिव्यक्ति में एक मौलिकता, एक प्रभावोत्पादकता हो।

## कथोपकथन

गति कथावस्तु का प्राण है और उसकी प्राप्ति का साधन है कथोपकथन। कथोपकथन स्वाभाविक, उपयुक्त होना चाहिए तथा साथ ही उसमें अभिनयात्मकता होनी चाहिए। कथोपकथन में पात्रों का व्यक्तित्व लक्षित होना चाहिए तथा कथोपकथन पात्रों के व्यक्तित्व के सुतरां योग्य और अनुकूल ही होना चाहिए। साथ-साथ कथोपकथन की सीमा इतनी न बढ़ जावे कि पाठक ऊब उठे।

कथोपकथन संक्षिप्त होगा तो कहानी की गतिशीलता बढ़ाने में अधिक सफल हो सकेगा ।

## वातावरण (देशकाल)

घटनाओं के सम्पन्न होने के स्थान तथा समय को देशकाल कहते हैं। कहानीकार को अपनी कहानी में स्वाभाविकता लाने के लिए देशकाल का पूर्ण ज्ञान होना आवश्यक है। इतिहास अथवा प्रकृति विरोधी वातावरण बनाकर लेखक उपहास का पात्र बनता है।

देशकाल के दो भेद हैं सामाजिक और ऐतिहासिक।

एक लेखक समस्त समाज की समस्त बाह्य तथा आन्तरिक प्रवृतियों को चित्रित नहीं कर सकता। वह एक विशेष प्रवृति को लेता है और उसके चित्रण को सफल बनाने के लिए यह आवश्यक है कि वह उस प्रवृति विशेष से सम्बन्धित प्रत्येक आचार विचार तथा रीति रिवाज एवं परिस्थितियों से पूर्ण परिचित हो। सामाजिक कहानियों की अपेक्षा ऐतिहासिक कहानियों मे तो देशकाल का ज्ञान और भी आवश्यक है। उसके बिना कहानी में स्वाभाविकता आ ही नही पाती।

## शैली

लेखक अपने मनो भावों को जिस अनूठे ढंग से प्रकट करता है, उसको शैली कहते हैं। प्रत्येक लेखक की अपनी निजी शैली होती है, जिसका निर्माण उसकी योग्यता और प्रवृत्ति के अनुकूल होता है। भाषा और शैली का उद्देश्य यही है कि गूढ से गूढ भावनाएँ लेखक द्वारा खूब स्पष्ट होकर रोचकता के साथ व्यक्त हो जाएँ। उचित शब्दों की स्थापना से ही इस उद्देश्य की सिद्धि होती है। भाषा को बहुत अधिक अलंकृत और चमत्कृत करना भी उचित नहीं है। स्पष्टता एवं सीधेपन में जो प्रभाव होता है वह सजाव शृंगार एवं घुमाव मे नही होता। यह सदैव स्मरण रहना चाहिए कि लेखक का काम कहानी द्वारा पाठकों को जागृत करना होता है न कि उनमें चकाचौंध उत्पन्न करना। अतएव प्रत्येक शब्द के प्रति कहानीकार को श्रद्धा होनी चाहिए।

## उद्देश्य

कहानी का उद्देश्य जीवन की व्याख्या है। अतएव कहानीकार का उद्देश्य स्वान्तः सुखाय न होकर लोक कल्याण होता है। उच्चकोटि का उद्देश्य वही है जो अधिक से अधिक जनों के हृदय को छू सके। कहानी समाप्त होने पर पाठक की जिज्ञासा शान्त हो सके और उसमें कहानी के और आगे पहुंचने की लालसा जाग्रत हो सके, यही प्रत्येक सफल कहानीकार का उद्देश्य होता है तथा यही कहानी की सार्थकता होती है।

## हिन्दी कहानी का उद्‌भव और विकास

हिन्दी कहानी का आरम्भ २० वीं सदी के शुरू से माना जा सकता है। सन् १९०० में जून मास की सरस्वती में किशोरीलाल स्वामी की लिखी हुई कहानी 'इन्दुमति' प्रकाशित हुई थी। यह मौलिक कहानी नहीं है बल्कि शेक्सपियर के प्रसिद्ध नाटक 'टेम्पेस्ट' का रूपान्तर मात्र है। फिर भी चूंकि लेखक ने भारतीय वातावरण के अनुकूल उक्त नाटक को कहानी में ढालने का प्रयास किया है, इसलिए इसे मौलिक नही तो अर्धमौलिक तो माना ही जा सकता है।

मौलिकता की दृष्टि से हिन्दी की सबसे पहली कहानी वंग महिला कृत 'दुलाईवाली' है। यह भी कोई उच्चकोटि की कहानी नहीं है, फिर भी एक मौलिक कहानी के समस्त आवश्यक गुण इसमें मौजूद हैं। इस बीच की अन्य उल्लेखनीय कहानियाँ इस प्रकार हैं। किशोरीलाल गोस्वामी की 'गुलवहार' (१९०२) मास्टर भगवानदास की 'प्लेग की चुडैल' (१९०२) रामचन्द्र शुक्ल की '११ वर्ष का समय' (१९०३) और गिरिजादत्त बाजपेयी की 'पंडित और पंडितानी' (१९०३)। ये सारे प्रयास केवल ऐतिहासिक दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। इनमें हमें आधुनिक कहानी कला के बीजों के दर्शन नहीं होते।

आज की हिन्दी कहानियाँ जिस परम्परा को लेकर आगे बढ़ रही है उसकी नींव श्री जयशंकरप्रसाद की 'इन्दु' नामक मासिक पत्रिका से हुई थी। सन् १९११ में प्रसादजी की 'ग्राम' शीर्षक कहानी इस पत्रिका में प्रकाशित हुई थी। प्रसिद्ध हास्य लेखक जी० पी० श्रीवास्तव और 'उसने कहा था' के अमर लेखक चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की प्रथम कहानियाँ भी इसी पत्र से सामने आईं। वैसे तो

इन कहानियों में यथार्थ के प्रथम आभास मिलने लगे थे फिर भी इनमें परिपक्वता का अभाव था। इन कहानियों की सबसे पहली कमजोरी यह थी कि आकस्मिक घटनाओं और संयोग के बिना ये जरा नहीं बढ़ पाती थीं। परन्तु शीघ्र ही हिन्दी कहानी ने अपना सही रास्ता पहचान लिया। वह रास्ता यथार्थवाद का था। सन् १९१५ में गुलेरी जी की 'उसने कहा था' और प्रेमचन्द की 'पंच परमेश्वर' शीर्षक कहानियाँ प्रकाशित हुईं। इनके साथ ही हिन्दी की कहानी की यथार्थवादी यात्रा शुरू हो गयी।

१९१५–१६ तक विश्वम्भरनाथ जिंज्जा, राजा राधिकारमणप्रसादसिंह, विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक', ज्वालादत्त शर्मा और चतुरसेन शास्त्री की प्रथम कहानियाँ प्रकाशित हो चुकी थी। इनके बाद जिस जाज्वल्यमान नक्षत्र का उदय हुआ वह सुदर्शन थे। सन् १९२० में उनकी पहली कहानी हिन्दी में छपी; उर्दू में वह पहले से ही लिख रहे थे। पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' का आविर्भाव १९२२ में हुआ। वह एक नई शैली और अद्‌भुत शक्ति लेकर आये थे। उग्र के आविर्भाव के पहले तक हिन्दी कहानी की मुख्यतः दो धाराएँ थी। एक थी भावमूलक जिसके अग्रणी प्रसाद जी थे, दूसरी यथार्थमूलक जिसके अग्रणी थे प्रेमचन्द। यथार्थ के बारे मे प्रेमचन्द की अपनी धारणा थी उन्होने उसे आदर्शोन्मुख करके अपनाया था। उग्रजी नग्न यथार्थ के चित्रण में जुट गये। यह प्रवृत्ति कल्याणकारी भले न रही हो परन्तु इतना तो मानना ही पड़ेगा कि उग्र एक नयापन लेकर आए और उन्होने जो हलचल मचाई उसके कारण आगे चलकर कहानी और भी परिमार्जित हुई। कहानी में चुस्ती और जिंदादिली आई।

इसके बाद हम एक और मोड़ पर आते हैं। जहाँ से हमें हिन्दी कहानी का और भी कलात्मक रूप दिखाई पड़ता है। यह मोड़ सन् १९२७ का वर्ष है जब जैनेन्द्रकुमार का उदय हुआ। जैनेन्द्र एक निराली नवीनता के साथ उदय हुये थे। सबसे बड़ी बात तो यह थी कि उनकी भाषा का ठाठ ही नया था। परन्तु यह ठाठ अपरिचित नही बल्कि असाधारण रूप से सुपरिचित था, यह ठेठ खड़ी बोली का ठाठ था, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, जैनेन्द्र की भाषा पर टिप्पणी करते हुए कहते है कि यही खड़ी बोली असली और स्वाभाविक भाषा थी, मुंशियों की उर्दू-ए-मुअल्ला नही। यह अपने ठेठ रूप में बराबर पछांह के घरों मे बोली जाती है।

सन् १९२७ के वाद से अनेक अन्य प्रतिभाशाली लेखकों का आविर्भाव हुआ, जैसे भगवतीचरण वर्मा, अज्ञेय, चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, यशपाल और अश्क आदि, इस काल में १९१५–२७ के काल वाले लेखक भी सक्रिय थे और वे भी श्रेष्ठ कहानियों की रचना कर रहे थे। प्रेमचन्द की 'कफन' और प्रसाद की धुआँ आदि कहानियाँ इसी काल में लिखी गई। देश का राष्ट्रीय आन्दोलन, अन्तर्राष्ट्रीय जागृति और क्रान्ति की विश्वव्यापी लहर का असर अब साहित्य पर गहरा होकर पड़ रहा था। ऐसे संक्रान्तिकाल साहित्य के लिए वड़े महत्वपूर्ण होते है। आधुनिक हिन्दी के अधिकांश महानतम ग्रन्थ इसी १९३०–४० के काल में लिखे गये है। यह काल हिन्दी कहानी के विकास में भी अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं क्योंकि इस वीच कहानी की प्रतिष्ठा वहुत वढ़ी। सभी ने इस साहित्य के रूप के आकर्पण को माना और इस युग के अग्रणी कवियों ने भी कहानी के माध्यम को अपनाया। पंत, निराला, सियारामशरण, माखनलाल चतुर्वेदी आदि की कहानियों में हमें प्रचुर कलात्मक विविधता मिलती है।

इस वीच अनेक कहानी लेखिकाएँ भी क्षेत्र में आई। सुभद्राकुमारी चौहान, सत्यवती मलिक, कमला चौधरी, उपा मित्रा, होमवती देवी और सुमित्राकुमारी सिन्हा इसी काल की लेखिकाएँ है।

इसके वाद हम आधुनिक काल में आते हैं। प्रसाद और प्रेमचन्द को छोड़ कर लगभग सभी कहानीकार अभी जीवित हैं। और उनमें से अनेक तो लिख भी रहे हैं। परन्तु पहले खेवे वाले लोग लगता है अब काफी थक चुके हैं। दूसरे खेवे के अधिकांश लोग कहानियों की रचना करते जा रहे हैं। अज्ञेय, यशपाल अश्क ये तीन प्रतिभाएँ इस काल की प्रतिनिधि मानी जा सकती हैं।

अन्य लेखकों में जिन्होंने १९३०–४० में लिखना शुरू किया और जिनकी कला १९४०–५५ के वीच में निखरी, उनमें भैरवप्रसाद गुप्त, रांघेय राघव, चन्द्रकिरण सौनरिक्सा आदि प्रमुख हैं। युद्ध वा युद्ध के वाद और विशेषकर स्वतन्त्रता प्राप्ति के वाद से हिन्दी कहानी में अभूतपूर्व प्रगति हुई है। अनेक प्रतिभाशाली लेखक आजकल वड़ी तेजी से सामने आ रहे हैं। जिनमें कमलेश्वर, मार्कन्डेय, राजेन्द्र यादव, शम्भु भंडारी, रजनी पनिकर, गंगाधर शुक्ल और यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

# श्री जयशंकर प्रसाद

( जन्म सम्वत् १९४६ – मृत्यु सम्वत् १९९४ )

प्रसादजी साहित्य-जगत के पारस थे। साहित्य के जिस रूप को उन्होंने हाथ लगाया उसे ही जगमगा दिया। उनके काव्य को कौन सिर नहीं झुकाता, उनके नाटकों ने हिन्दी में युग-परिवर्तन किया। यही दशा कहानी क्षेत्र में है।

प्रसादजी की कहानियों का धरातल बहुत ऊंचा है। धरातल की ऊंचाई क्या ? जैसे वे "ममता" पर लिख रहे हैं। ममता विधवा है—उसका जीवन दुःखपूर्ण होगा, वह दुःख सहकर भी अपने सतीत्व की रक्षा करेगी—उसके सामने एक नही अनेकों प्रलोभन और संकट आ सकते है, पर वह डिगती नही; जहाँ है, वहीं अटल है। ऐसी "ममता" यदि हो तो उसका धरातल साधारण होगा, पर प्रसादजी की "ममता" यह सब "साधारण" लिए हुए इससे ऊपर है। वह वैधव्य की समस्या लेकर नही उसके सहारे मानवता के चिर प्रश्नों को उपस्थित करने के लिए उपस्थित हुई है। यह उसमें धरातल की ऊंचाई है। साधारण सामाजिक व्यवहार और आचार से उठ कर वह कहानी मौलिक समस्याओं में परिणति पा लेती है।

— डा० सत्येन्द्र

# ममता

: १ :

रोहतास-दुर्ग के प्रकोष्ठ में बैठी हुई युवती ममता, शोण के तीक्ष्ण गम्भीर प्रवाह को देख रही है। ममता विधवा थी। उसका यौवन शोण के समान ही उमड़ रहा था। मन में वेदना, मस्तक में आँधी, आंखों में पानी की बरसात लिए, वह सुख के कंटक-शयन में विकल थी। वह रोहतास दुर्गपति के मन्त्री चूड़ामणि की अकेली दुहिता थी, फिर उसके लिए कुछ अभाव होना असम्भव था, परन्तु वह विधवा थी—हिन्दू विधवा, संसार में सबसे तुच्छ निराश्रय है—तब उसकी विडम्बना का कहाँ अन्त था !

चूड़ामणि ने चुपचाप उसके प्रकोष्ठ में प्रवेश किया। शोण के प्रवाह में, उसके कल-नाद में अपना जीवन मिलाने में वह बेसुध थी। पिता का आना न जान सकी। चूड़ामणि व्यथित हो उठे। स्नेहपालिता पुत्री के लिए क्या करें, वह स्थिर न कर सकते थे। लौटकर बाहर चले गए। ऐसा प्रायः होता, पर आज मन्त्री के मन में बड़ी दुश्चिन्ता थी। पैर सीधे न पड़ते थे।

एक पहर बीत जाने पर वे फिर ममता के पास आये। उस समय उनके पीछे दस सेवक चांदी के बड़े थालों में कुछ लिये हुए खड़े थे; कितने ही मनुष्यों के पद-शब्द सुन ममता ने घूमकर देखा। मन्त्री ने सब थालों को रखने का संकेत किया। अनुचर थाल रखकर चले गए।

ममता ने पूछा—"यह क्या है पिताजी ?"

"तेरे लिए बेटी, उपहार है।" कहकर चूड़ामणि ने उनका आवरण उलट दिया। स्वर्ण का पीलापन उस सुनहली संध्या में विकीर्ण होने लगा। ममता चौंक उठी—

"इतना स्वर्ण ! यह कहाँ से आया ?"

"चुप रहो ममता, यह तुम्हारे लिए है।"

"तो क्या आपने म्लेच्छ का उत्कोच स्वीकार कर लिया ? पिताजी ! यह अनर्थ है, अर्थ नहीं है । लौटा दीजिये । पिताजी ! हम लोग ब्राह्मण हैं, इतना सोना लेकर क्या करेंगे ?"

"इस पतनोन्मुख प्राचीन सामन्त वंश का अन्त समीप है, बेटी ! किसी भी दिन शेरशाह रोहिताश्व पर अधिकार कर सकता है, उस दिन मन्त्रीत्व न रहेगा तब के लिए बेटी !"

"हे भगवन् ! तब के लिए ! विपद के लिए ! इतना आयोजन ! परम-पिता की इच्छा के विरुद्ध इतना साहस ! पिताजी, क्या भीख न मिलेगी ? क्या कोई हिन्दू-भू-पृष्ठ पर न बचा रह जायगा, जो ब्राह्मण को दो मुट्ठी अन्न दे सके ? यह असम्भव है । फेर दीजिए पिताजी, मैं कांप रही हूं.—इसकी चमक आंखों को अन्धा बना रही है ।"

"मूर्ख है", कहकर चूड़ामणि चले गए ।

× × ×

दूसरे दिन जब डोलियों का तांता भीतर आ रहा था, ब्राह्मण-मन्त्र चूडामणि का हृदय धक्-धक् करने लगा । वह अपने को रोक न सका । उसने जाकर रोहिताश्व-दुर्ग के तोरण पर डोलियों का आवरण खुलवाना चाहा । पठानों ने कहा—"यह महिलाओं का अपमान करना है ।"

बात बढ गई, तलवारें खिचीं; ब्राह्मण वही मारा गया और राजा-रानी और कोष सब छली शेरशाह के हाथ पड़े; निकल गई ममता । डोली भरे हुए पठान-सैनिक दुर्ग-भर में फैल गए, पर ममता न मिली ।

: २ :

काशी के उत्तर में धर्म चक्र विहार मौर्य और गुप्त सम्राटों की कीर्ति का खंडहर था । भग्न चूड़ा, तृण-गुल्मों से ढके हुए प्राचीन, ईंटो के ढेर में बिखरी हुई भारतीय शिल्प की विभूति, ग्रीष्म रजनी चन्द्रिका में अपने को शीतल कर रही थी ।

जहां पंचवर्गीय भिक्षु गौतम का उपदेश ग्रहण करने के लिए पहले मिले थे, उसी स्तूप के भग्नावशेष की मलिन छाया में एक झोपड़ी के दीपालोक में एक स्त्री पाठ कर रही थी—

"अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते······"

पाठ रुक गया। एक भीषण और हताश आकृति दीप के मन्द प्रकाश में सामने खड़ी थी। स्त्री उठी, उसने कपाट बन्द करना चाहा। परन्तु उस व्यक्ति ने कहा—"माता मुझे आश्रय चाहिये।"

"तुम कौन हो ?" स्त्री ने पूछा।

"मैं मुगल हूँ। चौसा-युद्ध में शेरशाह से विपन्न होकर रक्षा चाहता हूँ। इस रात अब आगे चलने में असमर्थ हूँ।"

"क्या शेरशाह से ?" स्त्री ने अपने ओंठ काट लिये।

"हाँ, माता !"

"परन्तु तुम भी वैसे ही क्रूर हो, वही भीषण रक्त की प्यास, वही निष्ठुर प्रतिबिम्ब, तुम्हारे मुख पर भी है। सैनिक ! मेरी कुटी में स्थान नहीं, जाओ, कहीं दूसरा आश्रय खोज लो।"

"गला सूख रहा है, साथी छूट गए हैं, अश्व गिर पड़ा है—इतना थका हुआ हूँ—इतना !" कहते-कहते वह व्यक्ति धम से बैठ गया और उसके सामने ब्रह्माण्ड घूमने लगा। स्त्री ने सोचा, यह विपत्ति कहाँ से आई। उसने जल दिया, मुगल के प्राणों की रक्षा हुई। वह सोचने लगी—'सब विधर्मी दया के पात्र नहीं—मेरे पिता का वध करने वाले आततायी।' घृणा से उसका मन विरक्त हो गया।

स्वस्थ होकर मुगल ने कहा—"माता ! तो फिर मैं चला जाऊँ ?"

स्त्री विचार कर रही थी—'मैं ब्राह्मणी हूँ मुझे तो अपने धर्म—अतिथि-देव की उपासना—का पालन करना चाहिए। परन्तु यहाँ—नहीं-नहीं, सब विधर्मी दया के पात्र नहीं। परन्तु यह दया तो नहीं—कर्त्तव्य करना है। तब ?'

मुगल अपनी तलवार टेककर उठ खड़ा हुआ। ममता ने कहा—"क्या आश्चर्य है कि तुम भी छल करो ?"

"छल ! नहीं, तब नहीं स्त्री ! जाता हूँ, तैमूर का वंशधर स्त्री से छल करेगा ? जाता हूँ। भाग का खेल है।"

ममता ने मन में कहा—'यहाँ कौन दुर्ग है ! यहीं झोंपड़ी न, जो चाहे ले ले, मुझे तो अपना कर्त्तव्य करना पड़ेगा ,' वह वाहर चली और मुगल से वोली—"जाओ भीतर, थके हुए भयभीत पथिक ! तुम चाहे कोई हो, मैं तुम्हें आश्रय देती हूँ मैं ब्राह्मण-कुमारी.हूं, सव अपना धर्म छोड़ दें, तो मैं भी क्यों छोड़ दूँ ? मुगल ने चन्द्रमा के मन्द प्रकाश में वह महिमामय मुखमंडल देखा, उसने मन-ही-मन नमस्कार किया । ममता पास की टूटी हुई दीवारों में चली गई । भीतर थके पथिक ने झोंपड़ी में विश्राम किया ।

× × ×

प्रभात में खंडहर की सन्धि से ममता ने देखा, सैकड़ो अश्वारोही उस प्रान्त में घूम रहे हैं । वह अपनी मूर्खता पर अपने को कोसने लगी ।

अव उस झोंपडी से निकलकर उस पथिक ने कहा—"मिरजा ! मैं यहाँ हूँ ।"

शब्द सुनते ही प्रसन्नता की चीत्कार-ध्वनि से वह प्रान्त गूंज उठा । ममता अधिक भयभीत हुई । पथिक ने कहा—"वह स्त्री कहाँ है ? उसे खोज. निकालो ।" ममता छिपने के लिये अधिक सचेष्ट हुई । वह मृग-दाव में चली गई । दिन-भर उसमें से न निकली । संध्या में जव उन लोगों के जाने का उपक्रम हुआ तो.ममता ने सुना, पथिक घोड़े पर सवार होते हुए कह रहा है—"मिरजा ! उस स्त्री को मैं कुछ न दे सका । उसका घर वनवा देना, क्योंकि मैंने विपत्ति में यहाँ विश्राम पाया था । यह स्थान भूलना मत ।" इसके वाद वे चले गये ।

× × ×

चौसा के मुगल-पठान-युद्ध को वहुत दिन वीत गये । ममता अव सत्तर वर्ष की वृद्धा है । वह अपनी झोंपड़ी में एक दिन पड़ी थी । शीतकाल का प्रभात था । उसका जीर्ण कंकाल खाँसी से गूंज रहा था । ममता की सेवा के लिए गांव की दो-तीन स्त्रियाँ उसे घेरकर वैठी थीं; क्योंकि वह आजीवन सवके सुख-दुःख की समभागिनी रही थी ।

ममता ने जव पीना चाहा, एक स्त्री ने सीपी से जल पिलाया । सहसा एक अश्वारोही उसी झोंपड़ी के द्वार दिखाई पड़ा । वह अपनी धुन में कहने

लगा—'मिरजा ने जो चित्र बनाकर दिया है, वह तो इसी जगह का होना चाहिए। वह बुढ़िया मर गई होगी, अब किससे पूछें कि एक दिन शहंशाह हुमायूँ किस छप्पर के नीचे बैठे थे ? यह घटना भी तो सैंतालीस वर्ष से ऊपर की हुई।"

ममता ने अपने विकल कानों से सुना। उसने पास की स्त्री से कहा—"उसे बुलाओ।"

अश्वारोही पास आया। ममता ने रुक-रुककर कहा—"मैं नहीं जानती कि वह शहंशाह था या साधारण मुगल, पर एक दिन इसी झोंपड़ी के नीचे वह रहा। मैंने सुना था कि वह मेरा घर बनवाने की आज्ञा दे चुका था। मैं आजीवन अपनी झोंपड़ी खुदवाने के डर से भयभीत ही थी। भगवान् ने सुन लिया, आज इसे छोड़े जाती हूं, अब तुम इसका मकान बनाओ या महल, मैं अपने चिर-विश्राम-गृह में जाती हूं।"

वह अश्वारोही अवाक् खड़ा था। बुढ़िया के प्राण-पक्षी अनन्त में उड़ गए।

× × ×

वहाँ एक अष्टकोण मन्दिर बना और उस पर शिलालेख लगाया गया—

"सातों देश के नरेश हुमायूं ने एक दिन यहाँ विश्राम किया था। उनके पुत्र अकबर ने उनकी स्मृति में यह गगनचुम्बी मन्दिर बनाया।"

पर उसमें ममता का कहीं नाम नहीं।

# उसने कहा था

वड़े-वड़े शहरों के इक्केगाडीवालो की जवान के कोड़ो से जिनकी पीठ छिल गई है, और कान पक गये हैं, उनसे हमारी प्रार्थना है कि अमृतसर वम्बूकार्ट वालों की वोली का मरहम लगावें। जब वड़े-वड़े शहरों की चौड़ी सड़कों पर घोड़े की पीठ को चाबुक से धुनते हुए, इक्केवाले कभी घोड़े की नानी से अपना निकट-सम्बन्ध स्थिर करते है, कभी राह चलते पैदलों की आँखों के न होने पर तरस खाते है, कभी उनके पैरों की अंगुलियों के पैरों को चीथकर अपने-ही को सताया हुआ वताते है, और संसार-भर की ग्लानि, निराशा और क्षोभ के अवतार वने, नाक की सीध चले जाते है, तव अमृतसर में उनकी विरादरी वाले तंग चक्करदार गलियों में हर-एक लड्ढीवाले के लिए ठहरकर, सब्र का समुद्र उमड़ा कर 'वचो खालसाजी !' 'हटो भाईजी !' 'ठहरना भाई !' 'आने दो लालाजी !' 'हटो वाछा !'—कहते हुए सफेद फेंटों, खच्चरों और वत्तकों और गन्ने, खोमचे, और भारेवालों के जंगल में से राह लेते है। क्या मजाल है कि 'जी' और 'साहव' विना सुने किसी को हटाना पड़े। यह वात नही कि उनकी जीभ चलती ही नहीं; पर मीठी छुरी की तरह महीन मार करती हुई। यदि कोई वुढ़िया वार-वार चितौनी देने पर भी लीक से नही हटती, तो उनकी वचनावली के नमूने है—हट जा जीणें जोगिए; हट जा, करमां वालिए; हट जा पुत्तां प्यारिए; वच जा लम्वी वालिए। समष्टि मे इनके अर्थ है, कि तू जीने योग्य है, तू भाग्यो वाली है, पुत्रों को प्यारी है, लम्वी उमर तेरे सामने है, तू क्यो मेरे पहिये के नीचे आना चाहती है ?—वच जा।

ऐसे वम्बूकार्टवालो के वीच में होकर एक लडका और एक लड़की चौक की एक दूकान पर आ मिले। उसके वालो और इसके ढीले सुथने से जान पडता था कि दोनों सिक्ख है। वह अपने मामा के केश धोने के लिए दही लेने आया

# पं० चन्द्रधर शर्मा गुलेरी

( जन्म संवत् १९४० – मृत्यु संवत् १९७६ )

पण्डित चन्द्रधर शर्मा गुलेरी का जन्म २५ आषाढ़ संवत् १९४० में जयपुर में हुआ था। देहावसान के समय उनकी आयु केवल ३९ वर्ष की थी।



गुलेरीजी लैटिन, फ्रैंच तथा जर्मन के भी ज्ञाता थे। बंगला तथा मराठी के तो आप असाधारण पण्डित थे। पुरातत्त्व, दर्शन, भाषा-तत्त्व, लिपिशास्त्र, प्राचीन इतिहास, संस्कृत, पाली, प्राकृत तथा हिन्दी के तो आप धुरंधर तथा प्रकाण्ड विद्वान् माने जाते थे।

उनकी "उसने कहा था" शीर्षक कहानी एक कण्ठ से हिन्दी साहित्य की सर्वश्रेष्ठ कहानी घोषित की गई है। साहित्य-महारथियों ने इसे हिन्दी की पहली तथा एक मात्र यथार्थवादी कहानी स्वीकार किया है। केवल साहित्य-महारथियों ने ही नहीं, किन्तु स्कूल, कॉलेज तथा युनिवर्सिटी में पढ़ने वाले विद्यार्थियों ने भी, जो कि कला के सच्चे समालोचक हैं, इसे अपने "हृदय की वस्तु" माना है। यह अप्रान्तिकता, असामयिकता तथा सार्वजनिकता ही "उसने कहा था" की अमर विशेषताएँ हैं।

इस बहुप्रसिद्ध कहानी के अतिरिक्त उन्होंने दो कहानियाँ "सुखमय जीवन" और "बुद्धू का काँटा" और लिखी थीं।

—शक्तिधर गुलेरी

पिंडलियों तक कीचड़ में धंसे हुए है। गनीम कहीं दिखता नहीं;—घंटे-दो-घंटे में कान के परदे फाड़नेवाले धमाके के साथ सारी खन्दक हिल जाती है और सौ–सौ गज धरती उछल पड़ती हैं। इस दैवी गोले से बचे तो कोई लड़े। नगरकोट का ज़लज़ला सुना था, यहाँ दिन में पचीस ज़लज़ले होते हैं। जो कहीं खन्दक से बाहर साफा या कुहनी निकल गई, तो चटाक से गोली लगती है। न मालूम बेईमान मिट्टी में लेटे हुए हैं या घास की पत्तियों में छिपे रहते हैं।'

'लहनासिंह और तीन दिन है। चार तो खन्दक में बिता ही दिये। परसो 'रिलीफ' आ जायगी, और फिर सात दिन की छुट्टी। अपने हाथ झटका करेंगे, और पेट-भर खाकर सो रहेंगे। उसी फिरंगी मेम के बाग में—मखमल की-सी हरी घास है। फल और दूध की वर्षा कर देती है। लाख कहते हैं, दाम नहीं लेती। कहती है—तुम राजा हो, मेरे मुल्क को बचाने आये हो।'

'चार दिन तक पलक नहीं झँपी। बिना फेरे घोड़ा बिगड़ता है और बिना लड़े सिपाही। मुझे तो संगीन चढ़ाकर मार्च का हुक्म मिल जाय। फिर सात जर्मनों को अकेला मारकर न लौटूँ, तो मुझे दरबार साहब की देहली पर मत्था टेकना नसीब न हो। पाजी कहीं के, कलों के घोड़े—संगीन देखते ही मुँह फाड़ देते है, और पैर पटकने लगते हैं। यों अँधेरे में तीस तीस मन का गोला फेंकते हैं। उस दिन धावा किया था—चार मील तक एक जर्मन नहीं छोड़ा था। पीछे जनरल साहब ने हट जाने का कमान दिया, नहीं तो—'

'नहीं तो सीधे बर्लिन पहुँच जाते, क्यों ?'—सूबेदार हजारासिंह ने मुसकरा कर कहा—'लड़ाई के मामले जमादार या नायक के चलाए नहीं चलते। बड़े अफसर दूर की सोचते है। तीन सौ मील का सामना है। एक तरफ बढ़ गए तो क्या होगा ?'

'सूबेदारजी, सच है'—लहनासिंह बोला—'पर करें क्या ? हड्डियों-हड्डियों में तो जाड़ा धंस गया है। सूर्य निकलता नहीं, और खाई में दोनों तरफ से चम्बे की बावलियों के-से सोते झर रहे हैं। एक धावा हो जाय, गरमी आ जाय।'

था, और यह रसोई के लिए वड़ियाँ। दूकानदार एक परदेशी से गुथ रहा था, जो सेर-भर गीले पापड़ों की गड्डी को गिने विना हटता न था।

'तेरे घर कहाँ है?'

'मगरे में;—और तेरे?'

'मांझे में;—यहाँ कहाँ रहती है?'

अतरसिंह की वैठक में; वे मेरे मामा है।'

'मैं भी मामा के यहाँ आया हूं, उनका घर गुरु वाजार में है।'

इतने में दूकानदार, निवटा, और इनका सौदा देने लगा। सौदा लेकर दोनों साथ-साथ चले। कुछ दूर जाकर लड़के ने मुसकराकर पूछा—'तेरी कुड़माई हो गई?'

इस पर लड़की कुछ आंखें चढ़ाकर 'धत्' कहकर दौड़ गई, लड़का मुँह देखता रह गया।

दूसरे-तीसरे दिन सब्जीवाले के यहाँ, दूधवाले के यहाँ, अकस्मात् दोनों मिल जाते। महीना-भर यही हाल रहा। दो तीन वार लड़के ने फिर पूछा,—'तेरी कुड़माई हो गई?' और उत्तर में वही 'धत्' मिला एक दिन जव फिर लड़के ने वैसे ही हँसी में चिढाने के लिए पूछा तो लड़की, लड़के की सम्भावना के विरुद्ध, वोली—'हाँ, हो गई।'

'कव?'

'कल; देखते नहीं, यह रेशम से कढ़ा हुआ सालू।

लड़की भाग गई: लड़के ने घर की राह ली। रास्ते में एक लड़के को मोरी में ढकेल दिया, एक छावनी वाले की दिन-भर की कमाई खोई, एक कुत्ते पर पत्थर मारा और एक गोभी वाले के ठेले में दूध उंड़ेल दिया। सामने नहाकर आती हुई किसी वैष्णवी से टकराकर अन्धे की उपाधि पाई। तव कहीं घर पहुँचा।

( २ )

'राम-राम, यह भी कोई लड़ाई हैं! दिन रात खन्दकों में वैठे हड्डियां अकड़ गईं। लुधियाना से दस-गुना जाड़ा और मेंह, और वरफ ऊपर से।

कीरतसिंह की गोदी पर मेरा सिर होगा और मेरे हाथ के लगाये हुए आंगन के पेड़ की छाया होगी ।'

वजीरासिंह ने त्यौरी चढ़ाकर कहा—'क्या मरने-मारने की वात लगाई हे ? मरे जर्मनी और तुरक ! हाँ भाइयों, कैसे—'

दिल्ली शहर तें पिशौर नु जाँदिए,
कर लेणा लौंगा दा व्योपार मंडिए;
( ओय ) लागा चटाका कदुए नु ।
कद्दू बण्याए मजेदार गोरिए,
हुण लगा चटाका कदुए नु ॥

कौन जानता था कि दाढ़ियोंवाले, घरवारी सिख ऐसा लुच्चों का गीत गायेंगे; पर सारी खन्दक इस गीत से गूंज उठी और सिपाही फिर ताजे होगये, मानों चार दिन से सोते और मौज ही करते रहे हों ।

( ३ )

दोपहर वीत गई है। अँधेरा है। सन्नाटा छाया हुआ है। वोधासिंह खाली बिसकुट के तीन टीनों पर अपने दोनों कम्वल विछा कर और लहनासिंह के दो कम्वल और बरानकोट ओढ़ कर सो रहा है। लहनासिंह पहरे पर खड़ा हुआ है। एक आँख खाई के मुंह पर है और एक बोधासिंह के दुवले पतले शरीर पर। वोधासिंह कराहा।

क्यों वोधा भाई क्या है ?'

पानी पिला दो ।'

लहनासिंह ने कटोरा उसके मुंह से लगाकर पूछा—कहो, कैसे हो ?' पानी पीकर वोधा वोला—'कंपनी छूट रही है। रोम-रोम में तार दौड़ पड़े है। दाँत वज रहे है ।'

'अच्छा, मेरी जरसी पहन लो'

'और तुम ?'

'मेरे पास सिगड़ी है और मुझे गर्मी लगती है। पसीना आ रहा है।'

'ना मैं नहीं पहनता; चार दिन से तुम मेरे लिए—'

'उदमी उठ, सिगड़ी में कोले डाल। वजीरा, तुम चार जने बालटियाँ लेकर खाई का पानी बाहर फेंको। महासिंह, शाम हो गई है, खाई के दरवाजे का पहरा बदल दे।'—यह कहते हुए सूबेदार सारी खन्दक में चक्कर लगाने लगे।

वजीरासिंह पलटन का विदूषक था। बाल्टी में गंदला पानी भर कर खाई के बाहर फेंकता हुआ बोला—'मैं पाधा बन गया हूँ। करो जर्मनी के बादशाह का तर्पण!'—इस पर सब खिलखिला पड़े, और उदासी के बादल फट गये।

लहनासिंह ने दूसरी बाल्टी भरकर उसके हाथ में देकर कहा—'अपनी बाड़ी के खरबूजे में पानी दो, ऐसा खाद का पानी पंजाब-भर में नहीं मिलेगा।'

'हाँ देश क्या है, स्वर्ग है। मैं तो लड़ाई के बाद सरकार से दस घुमा जमीन यहाँ माँग लूंगा, और फलों के बूटे लगाऊंगा।'

'लाड़ीहोराँ को भी यहाँ बुला लोगे? या वही दूध पिलाने वाली फिरंगी मेम—

'चुपकर। यहाँ वालों को शरम नहीं।'

'देश-देश की चाल है। आज तक मैं उसे समझा न सका कि सिख तम्बाखू नहीं पीते। वह सिगरेट देने में हठ करती है, ओठों में लगाना चाहती है और पीछे हटता हूँ तो समझती है कि राजा बुरा माना गया, अब मेरे मुल्क के लिए लड़ेगा नहीं।'

'अच्छा, अब बोधासिंह कैसा है?

'अच्छा है।'

जैसे मैं जानता ही न होऊँ! रात भर तुम अपने दोनों कम्बल उसे उढाते हो और आप सिगड़ी के सहारे गुजर करते हो। उसके पहरे पर आप पहरा दे आते हो। अपने सूखे लकड़ी के तख्तों पर उसे सुलाते हो, आप कीचड़ मे पड़े रहते हो। कही तुम न मांदे पड़ जाना। जाड़ा क्या है मौत है, और 'निमोनियां' से मरने वालों को मुरब्बे नहीं मिला करते।'

'मेरा डर मत करो। मैं तो बुलेल की खड्ड के किनारे मरूँगा। भाई

का मुँह देखा, बाल देखे, तब उसका माथा ठनका। लपटन साहब के पट्टियों वाले बाल एक दिन में कहाँ उड़ गए और उनकी जगह कैदियों से कटे बाल कहाँ से आ गए ?

शायद साहब शराब पिए हुए हैं और उन्हें बाल कटवाने का मौका मिल गया है ? लहनासिंह ने जाँचना चाहा। लपटन साहब पाँच वर्ष से उसकी रेजीमेंट में थे।

'क्यों साहब हम लोग हिन्दुस्तान कब जायेंगे ?'

'लड़ाई खत्म होने पर। क्यों क्या यह देश पसन्द नहीं ?'

नहीं साहब, शिकार के वे मजे यहाँ कहाँ ? याद है, पारसाल नकली लड़ाई के पीछे हम आप जगाधरी जिले में शिकार करने गये थे ?'—हाँ, हाँ।' —वहीं जब आप खोते[1] पर सवार थे और आपका खानसामा अब्दुल्ला रास्ते में एक मन्दिर में जल चढ़ाने को रह गया था ?' बेशक। 'पाजी कहीं का'—सामने से वह नीलगाय निकली कि ऐसी बड़ी मैंने कभी न देखी थी। और आपकी एक गोली कन्धे में लगी और पुट्ठे में निकली। ऐसे अफसर के साथ शिकार खेलने में मजा है। क्यों साहब, शिमले से तैयार होकर उस नीलगाय का सिर आ गया था न ? आपने कहा था कि रेजीमेंट की मेस में लगायेंगे।' हाँ, पर मैंने वह विलायत भेज दिया'—'ऐसे बड़े-बड़े सींग ! दो-दो फुट के तो होंगे ?'

'हाँ लहनासिंह, दो फुट चार इंच के थे। तुमने सिगरेट नहीं पिया ?'

'पीता हूं साहब, दियासलाई ले आता हूँ'—कहकर लहनासिंह खन्दक में घुसा। अब उसे सन्देह नहीं रहा था। उसने झटपट निश्चय कर लिया कि क्या करना चाहिए।

अँधेरे में किसी सोने वाले से वह टकराया।

कौन ? वजीरासिंह ?'

'हाँ, क्यों लहनासिंह ?' कयामत आ गई ? जरा तो आँख लगने दी होती ?'

---

१ गधे

हाँ, याद आई। मेरे पास दूसरी गरम जरसी है। आज सवेरे ही आई है। विलायत से मेमें बुन-बुनकर भेज रही हैं। गुरु उनका भला करे।'—यों कहकर लहना अपना कोट उतार कर जरसी उतारने लगा।

'सच कहते हो?'

'और नही झूठ?'—यों कहकर नाही करते बोधा को उसने जबरदस्ती जरसी पहना दी और आप खाकी कोट और जीन का कुरता भर पहनकर पहरे पर आ खड़ा हुआ। मेम की जरसी की केवल कथा थी।

आधा घंटा बीता। इतने मे खाई के मुंह से आवाज आई—सूबेदार हजारासिंह!

'कौन लपटन साहब! हुकुम हुजूर?'—कहकर सूबेदार तनकर फौजी सलाम करके सामने हुआ।

'देखो, इसी समय धावा करना होगा। मील भर की दूरी पर पूरब के कोने में एक जर्मन खाई है। उसमें पचास से जियादह जर्मन नहीं हैं। इन पेडों के नीचे-नीचे दो खेत काट कर रास्ता है। तीन-चार घुमाव है। जहाँ मोड़ है, वहाँ पन्द्रह जवान खड़े कर आया हूं। तुम यहाँ दस आदमी छोडकर सबको साथ ले उनसे जा मिलो। खन्दक छीन कर वहीं, जब तक दूसरा हुक्म न मिले, डटे रहो। हम यहाँ रहेगा।'

'जो हुकुम।'

चुपचाप सब तैयार हो गये। बोधा भी कम्बल उतारकर चलने लगा। तब लहनासिंह ने उसे रोका। लहनासिंह आगे हुआ, तो बोधा के बापू सूबेदार ने उंगली से बोधा की ओर इशारा किया। लहनासिंह समझ कर चुप हो गया। पीछे दस आदमी कौन रहे, इस पर बडी हुज्जत हुई। कोई रहना न चाहता था। समझा-बुझाकर सूबेदार ने मार्च किया। लपटन साहब लहना की सिगड़ी के पास मुंह फेरकर खड़े हो गये और जेब से सिगरेट निकाल कर सुलगाने लगे। दस मिनट बाद उन्होंने लहना की ओर हाथ बढाकर कहा—'लो तुम भी पियो।'

आँख मारते-मारते लहनासिंह सब समझ गया। मुंह का भाव छिपाकर बोला—'लाओ साहब'—हाथ आगे करते ही उसने सिगड़ी के उजाले मे साहब

बिजली की तरह दोनों हाथों से उल्टी वन्दूक को उठाकर लहनासिंह ने साहब की कुहनी पर तान कर दे मारा। धमाके के साथ साहब के हाथ से दियासलाई गिर पड़ी। लहनासिंह ने एक कुन्दा साहब की गर्दन पर मारा और साहब 'ऑख! मीन गौट्ट'[१] कहते हुए चित्त हो गए। लहनासिंह ने तीनों गोले वीनकर खन्दक के बाहर फेंके और साहब को घसीट कर सिगड़ी के पास लिटाया। जेबों की तलाशी ली। तीन-चार लिफाफे और एक डायरी निकालकर उन्हें अपने जेब के हवाले किया।

साहब की मूर्च्छा हटी। लहनासिंह हँसकर बोला—क्यों लपटन साहब? मिजाज कैसा है! आज मैंने बहुत बातें सीखीं। यह सीखा कि सब सिख सिगरेट पीते हैं। यह सीखा कि जगाधरी के जिले में नीलगायें होती हैं और उनके दो फुट चार इंच के सींग होते है। यह सीखा कि मुसलमान खानसामा मूर्तियों पर जल चढ़ाते हैं और लपटन साहब खोते पर चढ़ते हैं; पर यह तो कहो, ऐसी साफ उर्दू कहाँ से सीख आये! हमारे लपटन साहब तो विना 'डेम' के पाँच लफ्ज़ भी नहीं बोला करते थे।

लहना ने पतलून के जेबों की तलाशी नहीं ली थी। साहब ने, मानो जाड़े से वचने के लिए, दोनों हाथ जेब में डाले।

लहनासिंह कहता गया—'चालाक तो वड़े हो, पर माँझे का लहना इतने वरस लपटन साहब के साथ रहा है। उसे चकमा देने के लिए चार आँखे चाहिए। तीन महीने हुए एक तुरकी मौलवी मेरे गाँव में आया था। औरतों को बच्चे होने की तावीज वांटता था और वच्चों को दवाई देता था। चौधरी के वड़ के नीचे मजार विछाकर हुक्का पीता रहता था और कहता था जर्मनीवाले वड़े पंडित हैं। वेद पढ़-पढ़ कर उसमें से विमान चलाने की विद्या जान गये हैं। गौ को नहीं मारते। हिन्दुस्तान में आ जायेंगे, तो हत्या वन्द कर देंगे। मण्डी के वनियों को वहकाता था कि ड़ाकखाने से रुपया निकाल लो; सरकार का राज्य जाने वाला है। डाक वावू पोल्हूराम भी डर गया था। मैंने मुल्लाजी की

---

१ हाय! मेरे राम (जर्मन) २ खटिया

( ४ )

'होश में आओ। कयामत आई और लपटन साहब की वर्दी पहन कर आई है'।

'क्या ?'

'लपटन साहब या तो मारे गए हैं या कैद हो गए हैं। उनकी वर्दी पहन-कर यह कोई जर्मन आया है। सूबेदार ने इसका मुँह नहीं देखा। मैंने देखा और बातें की हैं। सौहरा[1] साफ उर्दू बोलता है, पर किताबी उर्दू और मुझे पीने को सिगरेट दिया है !'

'तो अब ?'

'अब मारे गए। धोखा है सूबेदार होरों कीचड़ में चक्कर काटते फिरेंगे और यहां खाई पर धावा होगा। उधर उन पर खुले में धावा होगा, उठो एक काम करो। पल्टन के पैरों के निशान देखते-देखते दौड़ जाओ। अभी दूर न गए होंगे। सूबेदार से कहो कि एकदम लौट आवें। खन्दक की बात झूंठ है चले जाओ, खन्दक के पीछे से निकल जाओ। पत्ता तक न खड़के। देर मत करो।'

हुकुम तो यह है कि यहीं—

'ऐसी-तैसी हुकुम की ! मेरा हुकुम—जमादार लहनासिंह, जो इस वक्त यहां सब से बड़ा अफसर है, उसका हुकुम है। मैं लपटन साहब की खबर लेता हूं।'

'पर यहां तो तुम आठ ही हो।'

'आठ नहीं, दस लाख। एक-एक अकालिया सिख सवा लाख के बराबर होता है। चले जाओ।'

लौटकर खाई के मुहाने पर लहनासिंह दीवार से चिपक गया उसने देखा कि लपटन साहब ने जेब से बेल के बराबर तीन गोले निकाले, तीनों को जगह-जगह खन्दक की दीवारों में घुसेड़ दिया और तीनों में एक तार सा बांध दिया। तार के आगे सूत की गुत्थी थी, जिसे सिगड़ी के पास रखा। बाहर की तरफ जाकर एक दियासलाई जलाकर गुत्थी पर रखने—

१ सुसुरा ( गाली )

लड़ाई के समय चाँद निकल आया था, ऐसा चाँद, जिसके प्रकाश से संस्कृत–कवियों का दिया हुआ 'क्षयी' नाम सार्थक होता है। और हवा ऐसी चल रही थी जैसी कि बाणभट्ट की भाषा में 'दन्तवीणोपदेशाचार्य' कहलाती। वजीरासिंह कह रहा था कि कैसे मन-मन भर फ्रांस की भूमि मेरे बूटों से चिपक रही थी, जब मैं दौड़ा-दौड़ा सूबेदार के पीछे गया था। सूबेदार लहनासिंह से सारा हाल सुन और कागजात पाकर वे उसकी तुरन्त बुद्धि को सराह रहे थे और कह रहे थे कि तू न होता, तो आज सब मारे जाते।

इस लड़ाई की आवाज तीन मील दाहिनी ओर की खाईवालों ने सुन ली थी। उन्होंने पीछे टेलीफोन कर दिया था। वहाँ से झटपट दो बीमार ढोने की गाड़ियाँ चली, जो कोई डेढ़ घंटे के अन्दर आ पहुंची। फील्ड अस्पताल नजदीक थां। सुबह होते-होते वहाँ पहुँच जायेंगे; इसलिए मामूली पट्टी बाँध कर एक गाड़ी में घायल लिटाए गए और दूसरी में लाशें रक्खी गईं। सूबेदार ने लहनासिंह की जाँघ में पट्टी बँधवानी चाही; पर उसने यह कहकर टाल दिया कि थोड़ा घाव है सबेरे देखा जायगा। बोधासिंह ज्वर में बर्रा रहा था। वह गाड़ी में लिटाया गया। लहना को छोड़कर सूबेदार जाते नहीं थे। यह देख लहना ने कहा—'तुम्हें बोधा की कसम है, और सूबेदारनीजी की सौगन्ध है, जो इस गाड़ी में न चले जाओ।'

'और तुम ?'

'मेरे लिए वहाँ पहुँचकर गाड़ी भेज देना और जर्मन मुरदो के लिए भी तो गाड़ियाँ आती होंगी। मेरा हाल बुरा नहीं है। देखते नहीं, मैं खड़ा हूँ ? वजीरासिंह मेरे पास है ही।'

'अच्छा, पर—'

'बोधा गाड़ी पर लेट गया ? भला। आप भी चढ़ जाओ। सुनिये तो, सूबेदारनी होरां को चिट्ठी लिखो, तो मेरा मत्था टेकना लिख देना। और जब घर जाओ, तो कह देना कि मुझसे जो उसने कहा था, वह मैंने कर दिया।'

गाड़ियाँ चल पड़ी थीं। सूबेदार ने चढ़ते-चढ़ते लहना का हाथ पकड़कर कहा—तैंने मेरे और बोधा के प्राण बचाए हैं। लिखना कैसा ? साथ ही घर चलेंगे। अपनी सूबेदारनी को तू ही कह देना। उसने क्या कहा था ?

गाड़ी मूड़ दी थी और गाँव से बाहर निकालकर कहा था कि मेरे गाँव में अब पैर रक्खा, तो—'

साहब की जेब में से पिस्तौल चली और लहना की जाँघ में गोली लगी। इधर लहना की हैनरीमार्टिन के दो फायरों ने साहब की कपाल क्रिया कर दी। धड़ाका सुन कर सब दौड़ आये।

बोधा चिल्लाया—'क्या है?

लहनासिंह ने उसे यह कहकर सुला दिया कि 'एक हड़का हुआ कुत्ता आया था, मार दिया' और औरों से सब हाल कह दिया। सब बन्दूक लेकर तैयार हो गए। लहना ने साफा फाड़कर घाव के दोनों तरफ पट्टियाँ कसकर बाँधी। घाव माँस में ही था। पट्टियों के कसने से लहू निकलना बन्द हो गया।

इतने में सत्तर जर्मन चिल्लाकर खाई में घुस पड़े। सिक्खों की बन्दूकों की बाढ़ ने पहले धावे को रोका। दूसरे को रोका। पर यहाँ थे आठ (लहनासिंह तक-तक कर मार रहा था।—वह खड़ा था, और वे लेटे हुए थे) और वे सत्तर। अपने मुर्दा भाइयों के शरीर पर चढ़कर जर्मन आगे घुसे आते थे। थोड़े से मिनटों में वे…………

अचानक आवाज आई—'वाह गुरुजी की फतह! वाह गुरुजी का खालसा!!' और धड़ाधड़ बन्दूकों के फायर जर्मनों के ऊपर पड़ने लगे। ऐन मौके पर जर्मन दो चक्की के पाटों के बीच में आ गये। पीछे से सूबेदार हजारासिंह के जवान आग बरसाते थे और सामने लहनासिंह के संगीन चल रहे थे। पास आने पर पीछे वालों ने भी संगीन पिरोना शुरू कर दिया।

एक किलकारी और—'अकाल सिक्खों की फौज आई! वाह गुरुजी की फतह! वाह गुरुजी का खालसा!! सत् श्री अकाल पुरुष!!—' और लड़ाई खतम हो गई। तिरसठ जर्मन या तो खेत रहे थे या कराह रहे थे। सिक्खों में पन्द्रह के प्राण गये। सूबेदार के कन्धे में से गोली आर-पार निकल गई। लहनासिंह की पसली में एक गोली लगी। उसने घाव को खन्दक की गीली मिट्टी से पूर लिया और बाकी को साफा कसकर कमरबन्द की तरह लपेट लिया। किसी को खबर न हुई कि लहना को दूसरा घाव—भारी घाव—लगा है।

भीतर पहुंचा । सूबेदारनी मुझे जानती हैं ? कब से ? रेजीमेंट के क्वार्टरों में तो कभी सूबेदार के घर के लोग रहे नहीं । दरवाजे पर जाकर 'मत्था टेकना' कहा असीस सुनी । लहनासिंह चुप ।

'मुझे पहचाना ?'

'नहीं ।'

'तेरी कुड़माई हो गई—धत्—कल हो गई—देखते नहीं, रेशमी बूटों-वाला सालू—अमृतसर में—'

भावों की टकराहट से मूर्च्छा खुली । करवट बदली । पसली का घाव बह निकला ।

'वजीरा, पानी—उसने कहा था ।

* * *

स्वप्न चल रहा है : सूबेदारनी कह रही है—'मैंने तेरे को आते ही पहचान लिया । एक काम कहती हूँ । मेरे तो भाग फूट गए । सरकार ने बहादुरी का खिताब दिया है; लायलपुर में जमीन दी है, आज नमकहलाली का मौका आया है; पर सरकार ने हम तीमियों[1] की एक घघरिया पल्टन क्यों न बना दी, जो मैं भी सूबेदार के साथ चली जाती ? एक बेटा है । फौज में भरती हुए उसे एक ही बरस हुआ है । इसके पीछे चार और हुए, पर एक भी नहीं जिया ।'—सूबेदारनी रोने लगी—'अब दोनों जाते हैं । मेरे भाग ! तुम्हें याद है, एक दिन ताँगेवाले का घोड़ा दहीवाले की दुकान के पास बिगड़ गया था । तुमने उस दिन मेरे प्राण बचाये थे । आप घोड़े की लातों में चले गये थे, और मुझे उठाकर दूकानदार के तख्ते पर खड़ा कर दिया था । ऐसे ही इन दोनों को बचाना । यह मेरी भिक्षा है । तुम्हारे आगे मैं आँचल पसारती हूँ ।'

रोती-रोती सूबेदारनी ओबरी[2] में चली गई । लहना भी आँसू पोंछता हुआ बाहर आया ।

'वजीरासिंह, पानी पिला'—उसने कहा था ।

---

१ स्त्रियों । २ अन्दर का घर ।

'अब आप गाड़ी पर चढ़ जाओ, मैंने जो कहा, वह लिख देना, और कह भी देना।'

गाड़ी के जाते ही लहना लेट गया—'वजीरा, पानी पिला दे, और मेरा कमरबन्द खोल दे : तर हो रहा है।

( ५ )

मृत्यु के कुछ समय पहले स्मृति बहुत साफ हो जाती है। जन्मभर की घटनाएँ एक-एक करके सामने आती हैं। सारे दृश्यों के रंग साफ होते हैं; समय की धुन्ध बिल्कुल उन पर से हट जाती है।

लहनासिंह बारह वर्ष का है। अमृतसर में मामा के यहाँ आया हुआ है। दहीवाले के यहाँ, सब्जीवाले के यहाँ, हर कहीं, उसे एक आठ वर्ष की लड़की मिल जाती है। जब वह पूछता है—'तेरी कुड़माई हो गई ?' तब 'धत्' कहकर वह भाग जाती है। एक दिन उसने वैसे ही पूछा, तो उसने कहा—'हाँ, कल हो गई, देखते नहीं यह रेशम के बूटोंवाला सालू ?'—सुनते ही लहनासिंह को दुःख हुआ। क्रोध हुआ। क्यों हुआ ?

'वजीरासिंह, पानी पिला दे।'

पच्चीस वर्ष बीत गए। अब लहनासिंह नं० ७७ रैफल्स में जमादार हो गया है, उस आठ वर्ष की कन्या का ध्यान ही न रहा। न मालूम वह कभी मिली थी, या नहीं। सात दिन की छुट्टी लेकर जमीन के मुकदमे की पैरवी करने वह अपने घर गया। वहाँ रेजीमेंट के अफसर की चिट्ठी मिली कि फौज लाम पर जाती है, फौरन चले आओ। साथ ही सूबेदार हजारासिंह की चिट्ठी मिली कि मैं और बोधसिंह भी लाम पर जाते हैं। लौटते हुए हमारे घर होते जाना; साथ ही चलेंगे। सूबेदार का गाँव रास्ते में पड़ता था, और सूबेदार उसे बहुत चाहता था। लहनासिंह सूबेदार के यहाँ पहुँचा।

जब चलने लगे, तब सूबेदार बेड़े[1] में से निकल कर आया। बोला—'लहना, सूबेदारनी तुमको जानती है, बुलाती है। जा मिल आ।'—लहनासिंह

---

१ जनाना

# प्रेमचन्द

( जन्म संवत् १९३७ – मृत्यु संवत् १९९३ )

हिन्दी भाषा के सर्वश्रेष्ठ उपन्यासकार प्रेमचन्दजी का स्थान कहानी-लेखकों में भी सर्व-प्रथम ही है। उच्चकोटि के अनेक उपन्यासों के साथ ही उन्होंने सैकड़ों कहानियाँ भी लिखीं। प्रेमचन्दजी के उपन्यासों और कहानियों की प्रमुख विशेषता यह है कि जिस वातावरण में लिखते थे, उसमें आकण्ठ-निमग्न हो कर ही लिखते थे। प्रेमचन्दजी ने जिस समाज का चित्र अंकित करने का बीड़ा उठाया था वह प्रधानतया दीन, ग्राम-निवासी या निम्नतर मध्यम वर्ग ही था। और अपने इस उद्देश्य की पूर्ति में उन्हें पूरी-पूरी सफलता मिली है।

उनकी कहानियों तथा उपन्यासों को पढते हुए पाठक भी पात्रों से तादात्म्य स्थापित कर स्वय भी उसी वातावरण में रमता-सा अनुभव करने लगता है। पुन. अपनी कहानियों में उन्होंने जिन घटनाओं को चित्रित किया है, वह सर्व साधारण के जन-जीवन में नित्य घटने वाली और बहुत ही स्वाभाविक बातें है जो साधारण पाठक के हृदय को भी छू लेती हैं। प्रेमचन्दजी की सफलता एवं लोकप्रियता का रहस्य इन्ही विशेषताओं में निहित है। अपनी रचनाओं में प्रेमचन्दजो ने भाषा का अत्यन्त चलता रूप ही अपनाया है, जिससे वह हृदय-ग्राही और स्वाभाविक भी बन गई है।

"पूस की रात" शीर्षक कहानी में प्रेमचन्दजी ने एक कृषक परिवार के जीवन का चित्र अंकित करके साधारण किसान की कठिनाइयों, वेदना एवं उसके हृदय में होने वाले अन्तर्द्वन्द्व का जो विवरण प्रस्तुत किया है, वह बहुत ही मार्मिक है। "जबरा कुत्ता" का वर्णन इतना सजीव एवं स्वाभाविक है कि उसके लिए भी प्रेमचन्दजी की सूक्ष्म पर्यवेक्षण दृष्टि की प्रशंसा किए बिना नहीं रहा जाता।

लहना का सिर अपनी गोद में रखे वजीरासिंह बैठा है। जब माँगता है, तब पानी पिला देता है, आध घण्टे तक लहना चुप रहा फिर बोला—कौन ! कीरतसिंह ?'

वजीरा ने कुछ समझकर कहा—'हाँ।'

'भइया, मुझे और ऊँचा कर ले। अपने पट्टे[1] पर मेरा सिर रखले'।

वजीरा ने वैसा ही किया।

'हाँ, अब ठीक है। पानी पिला दे। 'बस अब के हाड़[2] में यह आम खूब फलेगा। चचा-भतीजा दोनों यहीं बैठकर आम खाना। जितना बड़ा तेरा भतीजा है, उतना ही यह आम है। जिस महीने उसका जन्म हुआ था, उसी महीने में मैंने इसे लगाया था।'

वजीरासिंह के आंसू टपक रहे थे।

कुछ दिन पीछे लोगों ने अखबारों में पढ़ा—'फ्रान्स और बेलजियम—६८ वी सूची—मैदान में घावों से मरा—नं० ७७ सिख राइफल्स जमादार लहनासिंह।

१ जाघ। २ आषाढ़।

इस वाक्य में कठोर सत्य था, वह मानों एक भीषण जन्तु की भाँति उसे घूर रहा था।

उसने जाकर आले पर से रुपये निकाले और लाकर हल्कू के हाथ पर रख दिए। फिर बोली—"तुम छोड़ दो अबकी से खेती। मजूरी में सुख से एक रोटी खाने को तो मिलेगी। किसी की धौंस तो न रहेगी। अच्छी खेती है। मजूरी करके लाओ, वह भी उसी में झोंक दो, उस पर से धौंस।

हल्कू ने रुपये लिये और इस तरह बाहर चला मानो अपना हृदय निकाल कर देने जा रहा हो। उसने मजूरी से काट-काटकर तीन रुपये कम्बल के लिए जमा किये थे वे आज निकले जा रहे थे। एक-एक पग के साथ उसका मस्तिष्क अपनी दीनता के भार से दबा जा रहा था।

( २ )

पूस की अँधेरी रात! आकाश पर तारे भी ठिठुरते हुए मालूम होते थे। हल्कू अपने खेत के किनारे ऊख के पत्तों की एक छतरी के नीचे बाँस के खटोले पर अपनी पुरानी गाढ़े की चादर ओढ़े पड़ा काँप रहा था। खाट के नीचे उसका संगी कुत्ता जबरा पेट में मुँह डाले सर्दी से कूँ-कूँ कर रहा था। दोनों में से एक को भी नींद न आती थी।

हल्कू ने घुटनों को गर्दन में चिपटाते हुए कहा—"क्यों जबरा, जाड़ा लगता है। कहता तो था, घर में पुआल पर लेट रह, तू यहाँ क्या लेने आया था? अब खाओ ठन्ड, मैं क्या करूँ? जानते थे, मैं यहाँ हलुआ-पूरी खाने आ रहा हूँ, दौड़े-दौड़े आगे-आगे चले आये। अब रोओ नानी के नाम को।

जबरे ने पड़े-पड़े दुम हिलाई और वह अपनी कूँ-कूँ को दीर्घ बनाता हुआ एक बार जम्हाई लेकर चुप हो गया। उसकी श्वान बुद्धि ने शायद ताड़ लिया, स्वामी को मेरी कूँ-कूँ से नींद नहीं आ रही है।

हल्कू ने हाथ निकालकर जबरा की ठन्डी पीठ सहलाते हुए कहा—"कल से मत आना मेरे साथ, नहीं तो ठंडे हो जाओगे। यह रांड पछुआ न जाने कहाँ से बरफ लिए आ रही है। उठूँ, फिर एक चिलम भरूँ। किसी तरह रात तो कटे। आठ चिलम तो पी चुका। यह खेती का मजा है। और एक

: ३ :

# पूस की रात

## ( १ )

हल्कू ने आकर स्त्री से कहा—"सहना आया है, लाओ, जो रुपये रखे हैं उसे दे दूँ, किसी तरह गला तो छूटे।"

मुन्नी झाड़ू लगा रही थी। पीछे फिरकर बोली—"तीन ही तो रुपये हैं, दे दोगे तो कम्बल कहाँ से आएगा? माघ-पूस की रात हार में कैसे कटेगी? उससे कह दो, फसल पर रुपये दे देंगे। अभी नहीं हैं।

हल्कू एक क्षण अनिश्चित दशा में खड़ा रहा। पूस सिर पर आ गया, बिना कम्बल के हार में रात को वह किसी तरह नहीं सो सकता। मगर सहना मानेगा नहीं, घुड़कियाँ जमाएगा, गालियाँ देगा। बला से जाड़ों मरेंगे, बला तो सिर से टल जायगी। यह सोचता हुआ वह अपना भारी-भरकम डील लिए हुए (जो उसके नाम को झूठ सिद्ध करता था) स्त्री के समीप गया और खुशामद करके बोला—"ला, दे दे, गला तो छूटे। कम्बल के लिए कोई दूसरा उपाय सोचूँगा।

मुन्नी उसके पास से दूर हट गई और आँखें तरेरती हुई बोली—"कर चुके दूसरा उपाय! जरा सुनूँ कौन उपाय करोगे? कोई खैरात दे देगा कम्बल? न जाने कितनी बाकी है किसी तरह चुकने ही नहीं आती। मैं कहती हूं, तुम क्यों नहीं खेती छोड़ देते? मर-मर काम करो, उपज हो तो बाकी दे दो, चलो छुट्टी। बाकी चुकाने के लिए ही तो हमारा जन्म हुआ है। पेट के लिए मजूरी करो। ऐसी खेती से बाज आए मैं रुपये न दूँगी—न दूँगी।

हल्कू उदास होकर बोला—तो क्या गाली खाऊं?

मुन्नी ने तड़ककर कहा—"गाली क्यों देगा, क्या उसका राज है?

मगर यह कहने के साथ ही उसकी तनी हुई भौंहें ढीली पड़ गईं। हल्कू के

थी। झपटकर उठा और छतरी के बाहर आकर भूँकने लगा। हल्कू ने उसे कई बार पुचकारकर बुलाया, पर यह उसके पास न आया। हार में चारों तरफ दौड़कर भूँकता रहा। एक क्षण के लिए आ भी जाता, तो तुरन्त फिर दौड़ता। कर्तव्य उसके हृदय में अरमान की तरह उछल रहा था।

( ३ )

एक घण्टा और गुजर गया। रात ने शीत को हवा से धधकाना शुरू किया। हल्कू उठ बैठा और उसने दोनों घुटनों को छाती से मिलाकर सिर को उसमें छिपा लिया। फिर भी ठण्ड कम न हुई। ऐसा जान पड़ता था, सारा रक्त जम गया है, धमनियों में रक्त की जगह हिम बह रहा है। उसने झुककर आकाश की ओर देखा, अभी कितनी रात बाकी है? सप्तर्षि आकाश में आधे भी नहीं चढ़े। ऊपर आ जायँगे तब कहीं सवेरा होगा। अभी पहर-भर से ऊपर रात है।

हल्कू के खेत से कोई एक गोली के टप्पे पर आमों का एक बाग था। पतझड़ शुरू हो गया था बाग में पत्तियों का ढेर लगा हुआ था। हल्कू ने सोचा चलकर पत्तियाँ बटोरूँ और उन्हें जलाकर खूब तापूँ। रात को कोई मुझे पत्तियाँ बटोरते देखे, तो समझे कोई भूत है। कौन जाने कोई जानवर ही छिपा बैठा हो, मगर अब तो बैठा नहीं रहा जाता।

उसने पास के अरहर के खेत में जाकर कई पौधे उखाड़ लिये और उनकी एक झाड़ू बनाकर हाथ में सुलगता हुआ उपला लिये बगीचे की तरफ चला। जबरा ने उसे देखा तो पास आया और दुम हिलाने लगा।

हल्कू ने कहा—"अब तो नहीं रहा जाता जबरू, चलो बगीचे में पत्तियाँ बटोरकर तापें। टाँटे हो जायँगे तो फिर आकर सोयेंगे। अभी तो रात बहुत है।

जबरा ने कूँ-कूँ करके सहमति प्रकट की और आगे-आगे बगीचे की ओर चला। बगीचे में घुप अँधेरा छाया हुआ था और उस अन्धकार में निर्दय पवन पत्तियों को कुचलता हुआ चला जाता था। वृक्षों से ओस की बूँदें टप-टप नीचे टपक रही थीं।

भागवान ऐसे पड़े हैं, जिनके पास जाड़ा जाय तो गर्मी से घवरा कर भागे। मोटे-मोटे गद्दे, लिहाफ, कम्बल। मजाल है जो जाड़े की गुज़र हो जाय। तकदीर की खूबी है मजूरी हम करें, मजा दूसरे लूटें।

हल्कू उठा और गड्ढे में से जरा-सी आग निकालकर चिलम भरी। जबरा भी उठ बैठा।

हल्कू ने चिलम पीते हुए कहा—"पियेगा चिलम? जाड़ा तो क्या जाता है, हाँ मन बहल जाता है।

जबरा ने उसके मुँह की ओर प्रेम से छलकती हुई आँखों से देखा।

हल्कू—"आज और जाड़ा खा ले। कल से मैं यहाँ पुआल बिछा दूँगा। उसी में घुसकर बैठना, तब जाड़ा न लगेगा।

जबरा ने अगले पंजे उसके घुटने पर रख दिये और उसके मुँह के पास अपना मुँह ले गया। हल्कू को उसकी गर्म साँस लगी।

चिलम पीकर हल्कू फिर लेटा और निश्चय करके लेटा कि चाहे कुछ हो अब की सो जाऊँगा, पर एक ही क्षण में उसके हृदय में कम्पन होने लगा। कभी इस करवट लेटता, कभी उस करवट, पर जाड़ा किसी पिशाच की भाँति उसकी छाती को दवाये हुए था।

जब किसी तरह न रहा गया, तो उसने जबरा को धीरे से उठाया और उसके सिर को थपथपाकर उसे अपनी गोद में सुला लिया। कुत्ते की देह से जाने कैसी दुर्गन्ध आ रही थी, पर वह उसे अपनी गोद से चिपटाये हुए ऐसा सुख का अनुभव कर रहा था, जो इधर महीने-भर से उसे न मिला था। जबरा शायद यह समझ रहा था कि स्वर्ग यही है। हल्कू की पवित्र आत्मा में तो उस कुत्ते के प्रति घृणा की गंध तक न थी। अपने किसी अभिन्न मित्र या भाई को भी वह इतनी ही तत्परता से गले लगाता। वह अपनी दीनता से आहत न था, जिसने आज उसे इस दशा को पहुँचा दिया था। नहीं, इस अनोखी मैत्री ने जैसे उसकी आत्मा के सब द्वार खोल दिए थे और उसका एक-एक अणु प्रकाश से चमक रहा था।

सहसा जबरा ने किसी जानवर की आहट पाई। इस विशेष आत्मीयता ने उसमें एक नई स्फूर्ति पैदा कर दी थी, जो हवा के ठण्डे झोंकों को तुच्छ समझती

गया। पैरों पर जरा लपट लगी, पर वह कोई बात न थी। जबरा आग के गिर्द घूमकर उसके पास आ खड़ा हुआ।

हल्कू ने कहा—"चलो-चलो, ऐसे नहीं, ऊपर से कूदकर आओ।"

वह फिर कूदा और अलाव के इस पार आ गया।

( ४ )

पत्तियाँ जल चुकी थीं। बगीचे में फिर अँधेरा छाया हुआ था। राख के नीचे कुछ-कुछ आग बाकी थी, जो हवा का झोंका आ जाने पर जरा दहक उठती थी, पर एक क्षण में आँखें बन्द कर लेती थी।

हल्कू ने सिर से चादर ओढ़ ली और गर्म राख के पास बैठा हुआ एक गीत गुनगुनाने लगा। उसके बदन में गर्मी आ गई थी; पर ज्यों ज्यों शीत बढ़ता जाता था, उसे आलस्य दबाये लेता था।

जबरा जोर से भूँककर खेत की ओर भागा। हल्कू को ऐसा मालूम हो रहा था कि जानवरों का एक झुण्ड उसके खेत में आया है। शायद नीलगायों का झुण्ड था। उसके कूदने और दौड़ने की आवाजें साफ कान में आ रही थीं। फिर ऐसा मालूम हुआ कि खेत में चर रही हैं। उनके चबाने की आवाज चर-चर सुनाई देने लगी।

उसने दिल में कहा—'नहीं, जबरा के होते कोई जानवर खेत में नहीं आ सकता। नोंच ही डाले। मुझे भ्रम हो रहा है। कहाँ, अब तो कुछ सुनाई नहीं देता। मुझे भी कैसा धोखा हुआ है।'

उसने जोर से आवाज लगाई—"जबरा-जबरा!"

जबरा भूँकता रहा। उसके पास न आया।

फिर खेत चरे जाने की आवाज सुनाई दी। अब वह अपने को धोखा न दे सका। उसे अपनी जगह से हिलना जहर लग रहा था कैसा दंदाया हुआ बैठा था, ऐसे जाड़े-पाले में खेत में जाना, जानवरों के पीछे दौड़ना असूझ जान पड़ा। वह अपनी जगह से न हिला।

उसने जोर से आवाज लगाई—"लिह-लिहो! लिहो!"

एकाएक एक झोंका मेंहदी के फूलों की खुशबू लिये हुए आया।

हल्कू ने कहा—"कैसी अच्छी महक आई जवरू, तुम्हारी नाक में भी कुछ सुगन्ध आ रही है?

जवरा को कहीं जमीन पर एक हड्डी पड़ी मिल गई थी। वह उस चिचोड़ रहा था। हल्कू ने आग जमीन पर रख दी और पत्तियां बटोरने लगा। ज़रा देर में पत्तियों का एक ढेर लग गया। हाथ ठिठुरे जाते थे, नंगे पांव गले जाते थे और वह पत्तियों का पहाड़ खड़ा कर रहा था। इसी अलाव में वह ठण्ड को जलाकर भस्म कर देगा।

थोड़ी देर में अलाव जल उठा। उसकी लौ ऊपर वाले वृक्ष की पत्तियों को छू-छू कर भागने लगी। उस अस्थिर आकाश में बगीचे के विशाल वृक्ष ऐसे मालूम होते थे, मानो उस अथाह अन्धकार को अपने सिरों पर सँभाले हुए हों। अन्धकार के उस अनन्त सागर मे यह प्रकाश एक नौका के समान हिलता-मचलता हुआ जान पडता था।

हल्कू अलाव के सामने बैठा आग ताप रहा था। एक क्षण में उसने चादर उतारकर बगल मे दबा ली और दोनो पांव फैला दिये, मानो ठण्ड को ललकार रहा हो, 'तेरे जी मे आये सो कर ठण्ड की असीम शक्ति पर विजय पाकर वह विजय-गर्व को हृदय में छिपा न सकता था।

उसने जबरा से कहा—"क्यों जब्बर, अब तो ठण्ड नहीं लग रही है?"

जब्बर ने कूँ-कूँ करके मानो कहा—'अब क्या ठण्ड लगती ही रहेगी!"

"पहले से यह उपाय न सूझा, नही तो इतनी ठण्ड क्यों खाते?"

जब्बर ने पूँछ हिलाई।

"अच्छा आओ, इस अलाव को कूदकर पार करें, देखें कौन निकल जाता है। अगर जलगए बच्चा, तो मैं दवा न करूँगा।

जब्बर ने उस अग्नि-राशि की ओर कातर आंखों से देखा।

"मुन्नी से कल न कह देना, नहीं लड़ाई करेगी।

यह कहता हुआ वह उछला और उस अलाव के ऊपर से साफ निकल

# श्री जैनेन्द्रकुमार

( जन्म सन् १९०५ )

जैनेन्द्रकुमार के जीवन में कोई असाधारणता नहीं। अलीगढ़ जिले में कौड़ियागंज में १९०५ में जन्म हुआ और शिक्षा ब्रह्मचारी आश्रम जैन गुरुकुल में। गाँधी नीति को उन्होंने अपने जीवन का एक अनिवार्य अंग बना लिया है या यों कहें कि अपने जीवन और चिन्तन की नौका के लिए उन्होंने गाँधी के ध्रुवतारक को आधार मान और सब आधार छोड़ दिये हैं।



वे गंभीर निबन्धकार, चिन्तनशील, विचारक और प्रसिद्ध उपन्यासकार तथा कथाकार हैं। किन्तु सर्वसाधारण पाठक उन्हें कहानी लेखक के नाते ही विशेष जानते हैं। उनकी कुछ कहानियाँ–जैसे वह है या तत्सत्, साधु की हठ, पत्नी, एक रात, मास्टरजी, अपना पराया आदि सदैव याद रक्खी जायेंगी।

डॉ० प्रभाकर माचवे

जबरा फिर भूँक उठा। जानवर खेत चर रहे थे। फसल तैयार है। कैसी अच्छी फसल है, पर ये दुष्ट जानवर उसका सर्वनाश किये डालते हैं।

हल्कू पक्का इरादा करके उठा और दो-तीन कदम चला, पर एकाएक हवा का ऐसा ठण्डा चुभने वाला, बिच्छू-के डंक-सा झोंका लगा कि वह फिर बुझते हुए अलाव के पास आ बैठा और राख को कुरेदकर अपनी ठण्डी देह को गरमाने लगा।

जबरा अपना गला फाड़े डालता था। नीलगायें खेत का सफ़ाया किये डालती थी और हल्कू गरम राख के पास शान्त बैठा हुआ था। अकर्मण्यता ने रस्सियों की भाँति उसे चारों ओर से जकड़ रखा था।

उसी राख के पास गरम जमीन पर वह चादर ओढ़कर सो गया।

सवेरे जब उसकी नींद खुली तब चारों तरफ धूप फैल गई थी और मुन्नी कह रही थी—"आज क्या सोते ही रहोगे? तुम यहाँ आकर रम गए और उधर सारा खेत चौपट हो गया।"

हल्कू ने उठकर कहा—"क्या तू खेत से होकर आ रही है?

मुन्नी बोली—"हाँ, सारे खेत का सत्यानाश हो गया भला ऐसा भी कोई सोता है? तुम्हारे यहाँ मड़ैया डालने से क्या हुआ?"

हल्कू ने बहाना किया—"मैं मरते-मरते बचा, तुझे अपने खेत की पड़ी है। पेट में ऐसा दर्द हुआ कि मैं ही जानता हूँ।"

दोनो फिर खेत के डाँड पर आये। देखा, सारा खेत रौंदा हुआ पड़ा है और जबरा मड़ैया के नीचे चित लेटा है, मानों प्राण ही न हों।

दोनो खेत की दशा देख रहे थे। मुन्नी के मुख पर उदासी थी पर हल्कू प्रसन्न था।

मुन्नी ने चिन्तित होकर कहा—"अब मजूरी करके मालगुजारी भरनी पडेगी।"

हल्कू ने प्रसन्न मुख से कहा—"रात की ठण्ड में यहाँ सोना तो न पड़ेगा।"

# पत्नी

शहर के एक ओर एक तिरस्कृत मकान। दूसरा तल्ला। वहाँ चौके में एक स्त्री अंगीठी सामने लिये बैठी है। अंगीठी की आग राख हुई जा रही है। वह जाने क्या सोच रही है? उसकी अवस्था बीस–बाईस के लगभग होगी। देह से कुछ दुबली है और सम्भ्रान्त-कुल की मालूम होती है।

एकाएक अंगीठी में राख होती हुई आग की ओर स्त्री का ध्यान गया। घुटनों पर हाथ देकर वह उठी। उठ कर कुछ कोयले लाई। कोयले अंगीठी में डालकर फिर किनारे ऐसे बैठ गई, मानो याद करना चाहती है कि अब क्या करूँ, घर में और कोई नही है और समय बारह से ऊपर हो गया है।

दो प्राणी इस घर में रहते हैं, पति और पत्नी। पति सवेरे से गये हैं कि लौटे नही और पत्नी चौके में बैठी है।

वह (सुनन्दा) सोचती है—नहीं, सोचती कहाँ है, अलसभाव से वह तो वहाँ बैठी ही है। सोचने को है तो यही कि कोयले न बुझ जायँ।....वह जाने कब आएंगे। एक बज गया है! कुछ भी हो, आदमी को अपनी देह की फिक्र तो करनी चाहिये।....और सुनन्दा बैठी है। वह कुछ कर नहीं रही है। जब वह आएंगे तब रोटी बना देगी। वह जाने कहाँ-कहाँ देर लगा देते हैं। और कब तक बैठूँ? मुझसे नही बैठा जाता। कोयले भी दहक आये हैं। और उसने झल्लाकर तवा अंगीठी पर रख दिया। नहीं अब वह रोटी बना ही देगी। उसने जोर से खीझ कर आटे की थाली सामने खींच ली और रोटी बेलने लगी।

थोड़ी देर बाद उसने जीने पर पैरों की आहट सुनी। उसके मुख पर कुछ तल्लीनता आई। क्षण-भर वह आभा उसके चेहरे पर रह कर चली गई और फिर उसी भांति काम में लग गई।

कालिन्दीचरण (पति) आए। उनके पीछे-पीछे तीन और उनके मित्र भी

आए। ये आपस में बातें करते चले आ रहे थे और खूब गर्म थे। कालिन्दी-चरण मित्रों के साथ सीधे अपने कमरे में चले गए। उनमें बहस छिड़ी थी। कमरे में पहुँच कर रुकी हुई बहस फिर छिड़ गई। ये चारों व्यक्ति देशोद्धार के सम्बन्ध में बहुत कटिबद्ध हैं। चर्चा उसी सिलसिले में चल रही है। भारतमाता को स्वतंत्र करना होगा—और नीति-अनीति, हिंसा-अहिंसा को देखने का यह समय नहीं है। मीठी बातों का परिणाम बहुत देखा। मीठी बातों से बाघ के मुँह से अपना सिर नहीं निकाला जा सकता। उस वक्त बाघ का मारना ही एक इलाज है। आतंक! हाँ, आतंक। हमें क्या आतंकवाद से डरना होगा? लोग हैं जो कहते हैं, आतंकवादी मूर्ख हैं, वे बच्चे हैं। हाँ वे बच्चे और मूर्ख हैं। उन्हें बुजुर्गी और बुद्धिमानी नहीं चाहिए। हमें नहीं अभिलाषा अपने जीने की। हमें नहीं मोह बाल-बच्चों का। हमें नहीं गर्ज धन-दौलत की। तब हम मरने के लिए आजाद क्यों नहीं हैं? जुल्म को मिटाने के लिए कुछ जुल्म होगा ही। उससे वे डरें जो डरते हैं। डर हम जवानों के लिए नहीं है।

फिर वे चारों आदमी निश्चय करने में लगे कि उन्हें खुद क्या करना चाहिए।

इतने में कालिन्दीचरण को ध्यान आया कि न उसने खाना खाया है, न मित्रों के खाने के लिये पूछा है। उसने अपने मित्रों से माफी मांग कर छुट्टी ली और सुनन्दा की ओर चला।

सुनन्दा जहाँ थी, वहाँ है। वह रोटी बना चुकी है। अँगीठी के कोयले उल्टे तवे से दबे हैं। माथे को उँगलियों पर टिकाकर वह बैठी है। बैठी-बैठी सूनी-सी देख रही है। सुन रही है कि उसके पति कालिन्दीचरण अपने मित्रों के साथ क्यों और क्या बातें कर रहे हैं। उसे जोश का कारण नहीं समझ में आता। उत्साह उसके लिए अपरिचित है। वह उसके लिए कुछ दूर की वस्तु है, स्पृहणीय, मनोरम और हरियाली। वह भारतमाता की स्वतंत्रता को समझना चाहती है; पर उसको न भारतमाता समझ में आती है, न स्वतंत्रता समझ में आती है। उसे इन लोगों की इस जोरों की बातचीत का मतलब ही समझ में नहीं आता। फिर भी, उत्साह की उसमें बड़ी भूख है। जीवन की हौंस उसमें बुझती-सी जा रही है; पर वह जीना चाहती है। उसने बहुत चाहा

है कि पति उससे भी कुछ देश की बात करें। उसमें बुद्धि तो जरा कम है, फिर धीरे-धीरे क्या वह भी समझने नहीं लगेगी? सोचती है, कम पढ़ी हूं, तो इसमें मेरा ऐसा कसूर क्या है? अब तो पढ़ने को मैं तैयार हूं, लेकिन पत्नी के साथ पति का धीरज खो जाता है, खैर, उसने सोचा है, उसका काम तो सेवा है। बस, यह मानकर जैसे कुछ समझने की चाह ही छोड़ दी है। वह अनायास भाव से पति के साथ रहती है और कभी उनकी राह के बीच में आने की नहीं सोचती! वह एक बात जान चुकी है कि उसके पति ने अगर आराम छोड़ दिया है, घर का मकान छोड़ दिया है, जान-बूझकर उखड़े-उखड़े और मारे-मारे जो फिरते हैं, इसमें वे कुछ भला ही सोचते होंगे। इसी बात को पकड़ कर वह आपत्ति-शून्य भाव से पति के साथ विपदा-पर-विपदा उठातीं रही है। पति ने कहा भी है कि तुम मेरे साथ क्यों दुःख उठाती हो; पर सुन कर वह चुप रह गई है, सोचती रह गई है कि देखो, यह कैसी बात करते हैं। वह जानती है कि जिसे 'सरकार' कहते हैं, वह सरकार उनके इस तरह के कामों से बहुत नाराज है। सरकार सरकार है। उसके मन में कोई स्पष्ट भावना नहीं है कि 'सरकार' क्या होती है; पर यह जितने हाकिम लोग हैं, वे बड़े जबरदस्त होते हैं और उनके पास बड़ी-बड़ी ताकतें हैं। इतनी फौज, पुलिस के सिपाही और मजिस्ट्रेट और मुन्शी और चपरासी और थानेदार और वायसराय ये सब सरकार के ही हैं। इन सबसे कैसे लड़ा जा सकता है? हाकिम से लड़ना ठीक बात नहीं है; पर यह उसी लड़ने में तन-मन बिसार बैठे हैं। खैर लेकिन ये सब-के-सब इतने जोर से क्यो बोलते हैं? उसको यही बहुत बुरा लगता है। सीधे-साधे कपड़ों में एक खुफिया पुलिस का आदमी हरदम उनके घर के बाहर रहता है। ये लोग इस बात को क्यों भूल जाते हैं? इतने जोर से क्यों बोलते हैं?

बैठे-बैठे वह इसी तरह की बातें सोच रही है। देखो, अब दो बजेंगे। उन्हें न खाने की फिक्र, न मेरी फिक्र। मेरी तो खैर कुछ नहीं; पर अपने तन का ध्यान तो रखना चाहिए। ऐसी ही बेपरवाही से तो वह बच्चा चला गया। उसका मन कितना भी इधर-उधर डोले; पर अकेली जब होती है, तब भटक-भटक कर वह मन अन्त में उसी बच्चे के अभाव पर आ पहुंचता है। तब उसे बच्चे की बड़ी-बड़ी बातें याद आती हैं—वे बड़ी प्यारी आँखें, छोटी-छोटी अंगु-

लिया और नन्हें-नन्हें ओंठ याद आते हैं। अठखेलियाँ याद आती हैं। सबसे ज्यादा उसका मरना याद आता है। ओह! यह मरना क्या है। इस मरने की तरफ उससे देखा नही जाता। यद्यपि वह जानती है कि मरना सबको है—उसको मरना है, उसके पति को मरना है; पर उस तरफ भूल से छन-भर देखती, तो भय से भर जाती है। यह उससे सहा नहीं जाता। बच्चे की याद उसे मथ उठती है। तब वह विह्वल होकर आँख पोंछती है और हठात् इधर-उधर की किसी काम की बात में अपने को उलझा लेना चाहती है; पर अकेले में, वह कुछ करे, रह-रह कर वही वह याद—वही वह मरने की बात उसके सामने हो रहती है और उसका चित्त बेबस हो जाता है।

वह उठी। अब उठ कर बर्तनों को माँज डालेगी, चौका भी साफ करना है। ओह! खाली बैठी मैं क्या सोचती रहा करती हूँ।

इतने में कालिन्दीचरण चौके में घुसे।

सुनन्दा कठोरतापूर्वक शून्य को ही देखती रही। उसने पति की ओर नही देखा।

कालिन्दी ने कहा—सुनन्दा। खाने वाले हम चार है। खाना हो गया?

सुनन्दा चून की थाली और चकला-बेलन और बटलोई वगैरह खाली बरतन उठाकर चल दी, कुछ भी बोली नही।

कालिन्दी ने कहा—सुनती हो, तीन आदमी मेरे साथ और हैं। खाना बन सके तो कहो, नही तो इतने मे ही काम चला लेंगे।

सुनन्दा कुछ भी नही बोली। उसके मन में बेहद गुस्सा लगा। यह उससे क्षमा-प्रार्थी-से क्यों बात कर रहे हैं, हंस कर क्यों नहीं कह देते कि कुछ और खाना बना दो। जैसे मैं गैर हूँ। अच्छी बात है, तो मैं भी गुलाम नही हूँ कि इनके ही काम मे लगी रहूँ। मैं कुछ नही जानती खानाबाना। और वह चुप रही।

कालिन्दीचरण ने जरा जोर से कहा—सुनन्दा।

सुनन्दा के जी मे ऐसा हुआ कि हाथ की बटलोई को खूब जोर से फेंक दे। किसी का गुस्सा सहने के लिए वह नहीं है। उसे तनिक भी सुध न रही कि

अभी बैठे-बैठे इन्हीं अपने पति के बारे में कैसी प्रीति की और भलाई की बातें सोच रही थी। इस वक्त भीतर-ही-भीतर गुस्से से घुट कर रह गई।

"क्यों ? बोल भी नहीं सकती ?"

सुनन्दा नहीं ही बोली।

"तो अच्छी बात है। खाना कोई भी नहीं खाएगा।"

यह कह कर कालिन्दी तैश में पैर पटकते हुए लौटकर चले गए।

कालिन्दीचरण अपने दल में उग्र नहीं समझे जाते, किसी कदर उदार समझे जाते हैं। सदस्य अधिकतर अविवाहित हैं, कालिन्दीचरण विवाहित ही नहीं है, वह एक बच्चा खो चुके हैं। उनकी बात का दल में आदर है। कुछ लोग उनके धीमेपन पर रुष्ट भी हैं। वह दल में विवेक के प्रतिनिधि हैं और उत्ताप पर अंकुश का काम करते हैं।

बहस इतनी बात पर थी कि कालिन्दी का मत था कि हमें आतंक को छोड़ने की ओर बढ़ना चाहिए। आतंक से विवेक कुण्ठित होता है और या तो मनुष्य उससे उत्तेजित ही रहता है, या उसके भय से दबा रहता है। दोनों ही स्थितियाँ श्रेष्ठ नहीं है। हमारा लक्ष्य बुद्धि को चारों ओर से जगाना है, उसे आतंकित करना नहीं। सरकार व्यक्ति के और राष्ट्र के विकास के ऊपर बैठकर उसे दबाना चाहती है। हम इसी विकास के अवरोध को हटाना चाहते हैं—इसी को मुक्त करना चाहते हैं। आतंक से वह काम नहीं होगा। जो शक्ति के मद में उन्मत्त है, असली काम तो उसका मद उतारने और उसमें कर्त्तव्य-भावना का प्रकाश जगाने का है। हम स्वीकार करें कि मद उसकी टक्कर खाकर, चोट पाकर ही उतरेगा। यह चोट देने के लिए हमें अवश्य तैयार रहना चाहिये, पर यह नोचा-नोची उपयुक्त नहीं। इससे सत्ता का कुछ बिगड़ता तो नहीं, उल्टे उसे अपने औचित्य पर संतोष हो जाता है।

पर जब ( सुनन्दा के पास से ) लौट कर आया, तब देखा गया कि कालिन्दी अपने पक्ष पर दृढ़ नहीं है। वह सहमत हो सकता है कि हाँ, आतंक जरूरी भी है। "हाँ", उसने कहा, "यह ठीक है कि हम लोग कुछ काम शुरू करदें।" इसके साथ ही कहा, "आप लोगों को भूख नहीं लगी है क्या ? उनकी

तबियत खराब है, इससे यहां तो खाना बना नहीं। बताओ क्या किया जाय? कहीं होटल चलें?

एक ने कहा कि कुछ बाजार से यहीं मंगा लेना चाहिए। दूसरे की राय हुई कि होटल चलना चाहिए। इसी तरह की बातों में लगे थे कि सुनन्दा ने एक बड़ी थाली में खाना परोस कर उनके बीच ला रखा। रखकर वह चुपचाप चली गई। फिर आकर पास ही चार गिलास पानी के रख दिये और फिर उसी भांति चुपचाप चली गई।

कालिन्दी को जैसे किसी ने काट लिया।

तीनों मित्र चुप रहे। उन्हें अनुभव हो रहा था कि पति-पत्नि के बीच स्थिति में कुछ तनाव पड़ा हुआ है। अन्त में एक ने कहा—कालिन्दी, तुम तो कहते थे खाना नही है?

कालिन्दी ने झेंप कर कहा—मेरा मतलब था, काफी नहीं है।

दूसरे ने कहा—बहुत काफी है। सब चल जायगा।

देखूं, कुछ और हो तो—कह कर कालिन्दी उठ गया।

आकर सुनन्दा से बोला—यह तुमसे किसने कहा था कि खाना वहां ले आओ? मैंने क्या कहा था?

सुनन्दा कुछ न बोली।

"चलो, उठा कर लाओ थाली। हमें किसी को यहाँ नहीं खाना है। हम होटल जायंगे।"

सुनन्दा नहीं बोली। कालिन्दी भी कुछ देर गुम खड़ा था। तरह-तरह की बातें उसके मन में और कंठ में आती थीं। उसे अपना अपमान मालूम हो रहा था, और अपमान उसे असह्य था।

उसने कहा—सुनती नहीं हो कि कोई क्या कह रहा है! क्यों?

सुनन्दा ने और मुंह फेर लिया।

'क्या मैं बकते रहने के लिए हूं?'

सुनन्दा भीतर-ही-भीतर घुट गई।

'मैं पूछता हूं कि जब मैं कह गया था, तब खाना ले जाने की क्या जरूरत थी ?'

सुनन्दा ने मुड़कर और अपने को दबाकर धीमे से कहा—खाओगे नहीं ? एक तो बज गया।

कालिन्दी निरस्त्र होने लगा। यह उसे बुरा मालूम हुआ। उसने मानो धमकी के साथ पूछा—खाना और है ?

सुनन्दा ने धीमे से कहा—आचार लेते जाओ।

'खाना और नहीं है ? अच्छा लाओ अचार।'

सुनन्दा ने अचार ला दिया और लेकर कालिन्दी भी चला गया।

सुनन्दा ने अपने लिए कुछ भी बचाकर नहीं रखा था। उसे यह सूझा ही न था कि उसे भी खाना है। अब कालिन्दी के लौटने पर उसे जैसे मालूम हुआ कि उसने अपने लिये कुछ भी नहीं बचा रखा है। वह अपने से रुष्ट हुई। उसका मन कठोर हुआ; इसलिए नहीं कि क्यों उसने खाना नहीं बचाया। इस पर तो उसमें स्वाभिमान का भाव जागता था। मन कठोर यों हुआ कि वह इस तरह की बातें सोचती ही क्यों है ? छिः ! यह भी सोचने की बात है ! और उसमें कड़वाहट भी फैली। हठात् यह उसके मन को लगता ही है कि देखो उन्होंने एक बार भी नहीं पूछा कि तुम क्या खाओगी ! क्या मैं यह सह सकती थी कि मैं तो खाऊं और उनके मित्र भूखे रहें; पर पूछ लेते तो क्या था। इस बात पर उसका मन टूटता-सा है। मानों उसका जो तनिक-सा मानथा, वह भी कुचल गया हो। पर वह रह-रहकर अपने को स्वयं अपमानित कर लेती हुई कहती है कि छि ! छिः ! सुनन्दा, तुझे ऐसी जरा-सी बात का अब तक खयाल होता है; तुझे तो खुश होना चाहिए कि उनके लिए एक रोज भूखे रहने का तुझे पुण्य मिला। मैं क्यों उन्हें नाराज करती हूं ? अब से नाराज न करूंगी; पर वह अपने तन की भी सुध तो नहीं रखते। यह ठीक नहीं है। मैं क्या करूं ?

और वह अपने बरतन मांजने में लग गई। उसे सुन पड़ा कि वे लोग फिर जोर-शोर से बहस करने में लग गए हैं। बीच-बीच में हंसी के कहकहे भी उसे सुनाई दिए। 'ओ !' सहसा उसे खयाल हुआ, 'बरतन तो पीछे भी मल सकती हूं;

लेकिन उन्हें कुछ जरूरत हुई तो ?' यह सोच झटपट हाथ धो वह कमरे के दरवाजे के बाहर दीवार से लगकर खड़ी हो गई।

एक मित्र ने कहा—अचार और है ? अचार और मंगाओ यार !

कालिन्दी ने अभ्यासवश जोर से पुकारा—अचार लाना भाई, अचार। मानों सुनन्दा कहीं बहुत दूर हो; पर वह तो बाहर लगी खड़ी ही थी। उसने चुपचाप अचार लाकर रख दिया।

जाने लगी, तो कालिन्दी ने तनिक स्निग्ध वाणी से कहा—थोड़ा पानी भी लाना।

और सुनन्दा ने पानी ला दिया। देकर लौटी और फिर बाहर द्वार से लगकर ओट में खड़ी हो गई जिससे कालिन्दी कुछ माँगे, तो जल्दी से ला दे।

# श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान

( जन्म सम्वत् १९०४ – मृत्यु सम्वत् १९४३ )



'झांसी की रानी' शीर्षक सुप्रसिद्ध राष्ट्रीय कविता की अमर कवयित्री के रूप में श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान का नाम हिन्दी साहित्य में जाना-माना है। देश प्रेम और समाज सेवा की भावनाओं से आपकी कृतियाँ ओत प्रोत हैं। स्त्री जाति की दुर्दशा, बेबसी के प्रति आपके हृदय में अपार कपुरगा व्याप्त थी और वही आपकी रचनाओं की अतामा है। कवयित्री होने के साथ-साथ आप सफल कहानी लेखिका भी थीं। 'बिखरे मोती' नामक आपका कहानी-संग्रह पर्याप्त लोकप्रियता प्राप्त कर चुका है।

·प्रस्तुत कहानी 'तीन बच्चे' में कहानी लेखिका ने बाल–मनोविज्ञान का बड़ा सुन्दर चित्रण किया है। बालकों के मानस में अच्छे तथा कोमल संस्कार प्रारम्भ से ही भरे जावें तो वे निश्चय ही अच्छे और योग्य नागरिक बनते हैं, यही भाव अध्यायिका में व्यक्त किये गए।

—डॉ० रामचरण महेन्द्र

# तीन बच्चे

मेरे बच्चों में से प्रत्येक ने अपने लिए एक-एक फूलों का बगीचा लगाया था। बगीचा क्या फूलों की छोटी-छोटी क्यारियाँ थीं। एक दिन सवेरे हम लोगो ने देखा कि उन क्यारियों में फूल खिल आए हैं।

बच्चे ही तो ठहरे! हर एक को अपनी-अपनी क्यारी के फूल अधिक सुन्दर जान पड़े—और इसी बात पर उन लोगों में लड़ाई छिड़ गई। हर एक का कहना था कि उसकी क्यारी के फूल सब से अधिक सुन्दर हैं।

बात बढ़ते-बढ़ते फूलों से हटकर दूसरे क्षेत्र मे जा पहुंची। एक हिटलर बना, तो दूसरा मुसोलिनी और तीसरा स्टालिन, और मुझे इन तीनों की माँ बनने का सौभाग्य, एक साथ ही प्राप्त हो गया।

संग्राम में विषैले वाक्यों का प्रयोग होते सुनकर, मुझे चौके का काम छोड़, बगीचे की ओर जाना पड़ा। मुझे देखते ही सब एक साथ, अपने-अपने पक्ष का समर्थन कर, न्याय की दुहाई देने लगे। न्याय का कार्य उतना आसान न था, जितना एक अदालत के जज का होता है। जज के पथ-प्रदर्शन के लिए कानून होते हैं और नजीरें भी। चाहे लकीर की फ़कीरी में अन्याय ही क्यों न हो जाय, पर उसका मार्ग स्पष्ट रहता है। मेरे सामने न कानून था न नज़ीर—फिर भी मुझे यह लड़ाई समाप्त करनी थी—और न्यायपूर्वक!

मैं सोच ही रही थी कि निर्णय के लिए जूरी क्यों न नियत कर दिए जायें कि इतने में बच्चों के काका जी आते दीखे। चीखना चिल्लाना तो दूर उन्हें किसी का पंचम स्वर के ऊपर बोलना तक पसन्द नहीं है। बच्चों को लड़ते देखकर बोले—'अच्छा, यह लड़ाई किस लिए? यदि तुम लोग लड़े भिड़े तो मैं तुम्हारी माँ को सत्याग्रह न करने दूंगा।'

मेरे हिटलर-मुसोलिनी शान्त हो गए। माँ के बिना जिन्हें स्कूल तक जाने में कष्ट होता है; माँ के बिना जिनका एक भी काम नहीं हो सकता; वहीं मेरे

बच्चे जी से चाहते थे कि मैं सत्याग्रह करूं और जेल जाऊं।

अब मैंने उनसे पूछा कि कोई शिकायत तो नहीं है, तो सब एक स्वर से बोल उठे—"नहीं मां, सभी क्यारियों के फूल बहुत सुन्दर हैं। तुम सत्याग्रह करो और जल्दी जेल जाओ।"

हम सब भीतर जाने को उठ ही रहे थे कि बाहर से गाने की आवाज आई—गाना कोरस में था और स्वर था बच्चों का सा—

"भगवान् दया करना इतनी, मोरी नैया पार लगा देना।"

और अब तो हम सभी दरवाजे की ओर दौड़ पड़े। इसी समय दूसरा पद सुनाई पड़ा—

मैं तो डूबत हूँ मझधार पड़ी, मोरी बैयां पकड़ के उठा लेना।"

बाहर आकर देखा—तीन बच्चे थे—दो लड़कियाँ और एक लड़का। बड़ी लड़की होगी दस बरस की; छोटी आठ और सात के बीच में थी और लड़का—वह बड़ी की गोद में था ही—कोई पांच साल का। हम लोगों को देखते ही उन्होंने गाना बन्द कर दिया। लड़के को गोद से उतारकर, बड़ी ने जमीन से माथा टेककर, हमें प्रणाम किया। उसकी देखा-देखी छोटी लड़की और लड़के ने भी जमीन से माथा टेका और तीनों ने अपने चीथड़ों में छिपे हुए पेट को दिखाकर यह बतलाया कि वे भूखे हैं। बड़ी के साथ में एक झोली थी और छोटी के हाथ में एक टीन का डिब्बा। उन्होंने एक बार झोली की ओर देखा जो बिल्कुल खाली जान पड़ती थी, फिर हमारी ओर याचना की दृष्टि से देखने लगे। मैंने कहा—"तुम गाती तो बहुत अच्छा हो और भी कोई गाने जानती हो?"

बड़ी के बोलने से पहले ही छोटी बोल उठी—"हमें भजन भी आते हैं, बड़ी मालकिन!" और आदेश पाये बिना ही वे दोनों गाने लगीं—

"कमर कस ले रे बिलोचो, तेरे संग चलूँगो।
तेरे संग चलूँगो रे तेरे साथ चलूँगो।
कमर कस ले········।
मेरे साथ चलोगो तो मेरो अम्मा लड़ेगो········।"

हम लोगों की हँसी अब दबाये न दबी। अम्मा के लड़ने की बात सुनते ही वह फूट पड़ी। वे सभी शर्माकर चुप हो गये। उनकी दृष्टि से ऐसा जान पड़ता था कि वे किसी अज्ञात भूल से दुःखी हो गये हैं। मैंने हँसी रोककर, आश्वासन के स्वर में कहा—'बहुत अच्छा गाया'। मेरी बात सुनते ही वे फिर बैठकर लगे जमीन से माथा टेकने। मैंने पूछा—'तुम्हें क्या चाहिए—पका हुआ खाना या कच्चा?'

बड़ी ने फिर जमीन से माथा टेककर कहा— 'कुछ भी खाने को चाहिये, बड़ी मालकिन! कल से कुछ नही खाया है।' मैंने बच्चों से कहा इन्हें दो-दो पूरियाँ देदो—और मैं अन्दर चली गई।

बच्चों ने इन्हें कितनी-कितनी पूरियां दीं यह तो मैं नहीं कह सकती पर जब चौके में जाकर देखा तो न तो डिब्बे में एक भी पूरी थी और न कटोरे में तरकारी।

दूसरे दिन सुबह की चाय पीकर उठने ही वाले थे कि वे बाल गवैये फिर आ पहुंचे! हमे कोमल स्वर में, सुनाई पड़ा—

"सांवरिया हमें भूल गयो, सखि, सांवरिया।
बिंदरावन की कुंज गलिन में बाज रही है बांसुरिया।
हमें भूल गयो, सखि, सांवरिया॥"

मैंने अपने बच्चों से कहा—'कल तुमने उन्हें खूब पूरियाँ खिलाई थी न! अब वे फिर आ गये जैसे उनके लिए यहां रोज पूरिया धरी है!'

'धरी तो है, मां!' एक साथ ही बच्चों के मुंह से निकला और सबके हाथ एक साथ ही पूरी के डिब्बे की ओर बढ़े।

मैंने उन्हें रोकते हुए कहा—'ठहरो, ठहरो! रोज-रोज उन्हें पूरियां खिलाओगे तो वे दर्वाजा ही न छोड़ेंगे। उन्हें चावल या आटा देकर जाने को कह दो।'

एक बच्चा बोल उठा—'बिचारे छोटे-छोटे बच्चे, न जाने उनकी मां भी है या नही। वे भला कहाँ पकायेंगे?'

दूसरा ताने के स्वर में बोला—'इनने तो यही अच्छा है कि उन्हें कुछ भी न दिया जाय'।

सबसे छोटा बोला—'तुम भी माँ होकर ऐसा क्यों कहती हो, माँ ! उन विचारों को भी भूख लगी होगी। हमारे हिस्से की ही दे दो।'

लड़की सबमें समझदार थी। उनकी दृष्टि यही चाह रही थी कि माँ का इशारा भर मिले और पूरियों का डिब्बा ले जाकर वह उन बच्चों को खिला दे।

मैंने उदासीनता से कहा—'पूरियां ही दे दो, पर शाम को फिर तुम्हारे लिए नाश्ता बनाना पड़ेगा'।

'माँ हम शाम को नाश्ता नहीं करेंगे,' एक स्वर में एक साथ बच्चों ने कहा और हाथ में पूरियां लिये हुए दरवाजे की ओर दौड़ पड़े।

चौके का काम निपटाकर, मैं भी बाहर गई। देखा-वे तीनों बड़े मजे में पूरियां खा रहे थे और मेरे बच्चे भी बड़े उत्साह से उन्हें परस रहे थे। जब वे खा-पीकर उठे तो मैंने कहा—'देखो भाई ! तुमने पूरियां तो खा लीं, अब बिना गाना सुनाये न जा पाओगे।'

उन्होंने कृतज्ञतापूर्वक माथा जमीन पर टेक कर गाना शुरू किया—

"अब न रहूँगी कान्हा, तोरी नगरिया।
हाट-बाट मोरी गैल न छोड़े,
पनघट पर मोरी फोरे गगरिया।
अब न रहूँगी.... ...............॥"

गाना गा चुकने के बाद उन्होंने फिर जमीन से माथा टेका, जैसे हमें आशीर्वाद देकर जाने के लिए उद्यत हों, पर मैंने उन्हे रोककर पूछा—'क्या तुम तीनों भाई-बहन हो ?'

'हां बड़ी मालकिन'—बड़ी लड़की ने कहा।

मैंने पूछा—'तुम्हारा नाम क्या है ?' अपना नाम उसने 'ईठो' छोटी बहन का नाम 'सीठो' और भाई का नाम 'प्रेमा' बतलाया।

ईठो, सीठो, प्रेमा उनका नाम दुहराते हुए मैंने पूछा—'क्या तुम्हारे माँ-बाप कोई नहीं है ? तुम कल भी अकेले आये थे, आज भी।'

छोटी लड़की बड़ी तत्परता से बोली—'मां भी है और बाप भी है, बड़ी मालकिन, हमारे सब कोई हैं।'

'कहाँ हैं तुम्हारे मां-बाप जो तुम्हें इस तरह अकेले फिरने को भेज देते हैं ?'

'बाप अमरावती में है और मां…………'

'अमरावती में तुम्हारा बाप क्या करता है ?' मेरा छोटा लड़का बीच में ही पूछ बैठा।

'जेल में है, छोटे बाबू !' बड़ी लड़की ने उत्तर दिया।

'जेल में है ?' मैंने कुछ अनास्था से पूछा—'जेल क्यों हुई उसे ?'

लड़की बोली–'वह दारू जो पीता था। दंगा करता था, मां को मारता था; गाली बकता था और इसीलिए तो…………(लड़की आंख उठाकर मेरी ओर देखते हुए बोली) बड़ी मालकिन, पुलिस वालों ने उसे पकड़ा और सब लोग कहते हैं पुलिस वालों ने ठीक किया'।

'और तुम्हारी मां, वह अब कहां है ?' मैंने पूछा।

लड़की बोली–'मां ?……वह भी तो जेल में है, और उसी के साथ हमारा सबसे छोटा भाई भी है। वह तो ( अपने छोटे भाई की ओर उंगली दिखाकर लड़की ने कहा ) प्रेमा से भी छोटा है। वह रोता नहीं, इससे अच्छा है'।

'बेचारे बच्चे !' मेरे मुंह से निकल पड़ा—'मां-बाप दोनों जेल में और ये अनाथ सड़क पर भीख मांगते फिरते हैं।'

मैंने फिर पूछा–'तुम्हारी मां ने क्या किया था ?'

लड़की बोली–'हमारी मां ने पुलिस वाले को मारा था–जिसने हमारे बाप को पकड़ा था न, उसी को, और फिर वे मां को भी पकड़ ले गये। बड़े बुरे होते हैं पुलिस वाले–हमारी मां को भी ले गये। मां के बिना हमको भी बुरा लगता है पर यह प्रेमा तो रात-दिन रोता ही रहता है'।

मैंने लड़के की ओर देखा–बेचारा छोटा-सा बच्चा, मुश्किल से पांच बरस का फटे चिथड़े में लिपटा हुआ, सिर में महीनों तेल का नाम नहीं, रूखे बिखरे

बाल, न जाने कब से नहाया नहीं था, शरीर पर एक मैल की तह-सी जम गई थी, गालों पर आंसुओं के निशान बने हुए थे, आंसुओं के साथ-साथ उस स्थान की मैल जो धुल गई थी। मुझे उस बच्चे पर बड़ी दया आई। मैंने उस लड़की से पूछा–'तुम लोग अपनी मां से जेल में मिलने नहीं जाते?'

छोटी बोल उठी—'जाते हैं बड़ी मालकिन'। बड़ी बोल उठी–'तीन महीने में एकबार मुलाकात होती है। एक बार मुलाकात करने गये थे, दूसरी तीन महीने के बाद जब हम लोग गये तब मालूम हुआ कि मां को यहाँ से जेल में भेज दिया है तो हम लोग सब काली मां के साथ यहां चले आये। काली मां भी भीख मांगती है'।

'तुम लोग रात को कहाँ रहते हो? सोते कहाँ हो? तुम्हें डर नहीं लगता?' मैंने पूछा।

बड़ी लड़की ने कहा–'जेल के पास एक नाला है। हम लोग रात को वहीं पुल के नीचे मां की बातें करते-करते सो जाते हैं। कभी-कभी काली मां भी आ जाती है, पर वह रोज नहीं आती'।

'मां की सजा कितने दिन की है?'

'दो साल की' बड़ी लड़की ने कहा, 'हम रोज जेल को देखते हैं। हमारी मां वहीं तो है। जब मां छूटेगी हम उसको साथ लेकर देश जायेंगे।' एक प्रकार की खुशी से बालिका पुलकित हो उठी। अपनी मां को लेकर जैसे वह सचमुच देश जाने की तैयारी कर रही हो।

मैंने लड़की से पूछा–'तुम लोग नहाती हो कभी?'

संकोच से बड़ी लड़की चुप रही। छोटी ने कहा—'हमारे पास दूसरे कपड़े नहीं हैं न।'

मेरा इशारा पाते ही बच्चों ने अपने पुराने कपड़ों में से उनके पहनने के लिए बहुत-से कपड़े ला दिये।

मेरा चित्त उदास हो गया। मैं कमरे में बैठकर कुछ सोचने लगी कि ये बच्चे कपड़े लेकर खुशी-खुशी चले गये।

कुछ दूर से गाने की आवाज आई—

"मै तो डूबत हूं मझधार पड़ी,
मोरी बैंया पकड़ के उठा लेना।"

बहुत-से सुन्दर-सुन्दर पद पढ़े, लिखे और सुने थे। पर स्वर और आत्मा का ऐसा संयोग तो कही नही देखा था, शब्द और वस्तु का ऐसा मेल तो कभी चित्रित नही हुआ।

मैं उन्हें बुलाने के लिए झपटी, परन्तु तब तक वे दूर निकल गये थे।

( ३ )

इस घटना के दूसरे ही दिन मैं युद्ध-विरोधी सत्याग्रह करके, जेल की अतिथि बनी, मेरे और बच्चों ने तो हंसी-खुशी से विदाई दी पर सबसे छोटी-मीनू-बहुत छोटी होने के कारण मुझे छोड़ कर घर में न रह सकती थी। अतएव वह मेरे साथ ही गई।

उस समय जबलपुर जेल मे कोई अन्य राज-बन्दिनी न थी। अकेली होने के कारण मैं अस्पताल मे रखी गई। मेरी सेवा के लिए दो साधारण कैदी स्त्रियां रात मे मेरे साथ रहती थी। दिन मे सब लोग एक साथ रह सकते थे।

कैदखाने की दुनियां भी एक विचित्र ही वस्तु है।

यह कौन है? चोर!

यह? यह चरस बेचती थी और इसने अपने नवजात शिशु की हत्या करने की चेष्टा की थी, पर मां होकर यह हत्या कर सकती थी—इसका मुझे विश्वास न हुआ।

और यह लड़की? यह तो अभी बहुत कम उमर है, इसने क्या किया था? इसने अपने पति और सास को जहर दिया था!! मैं कांप उठी। विधाता! क्या यह सचमुच स्त्रियां है? क्या तुम्हारी ही आज्ञा से इनका भी सृजन हुआ था?

किन्तु इसी समय जैसे कोई अन्दर से बोल उठा—'यह तसवीर का एक ही पहलू है—इसकी दूसरी ओर भी देखो! सम्भव है यह निर्दोष हो, सम्भव है ये देवियां हों।'

मेरी सेवा के लिए जो दो औरतें तैनात थीं, उनमें से एक तो अल्हड़-सी थी, जिसे कुछ काम-काज न आता था पर दूसरी समझदार थी। वह प्रौढ़ थी। उसकी गोद मे भी एक बच्चा था! वह बड़ी फ़िक्र से सब काम करती थी। वह अधिकतर चुप रहती थी, जैसे सदा मन ही मन कुछ सोचा करती हो! मीनू को तो उसने इस प्रकार हिला लिया था जैसे वह उसी की बच्ची हो। उसका खुद का बच्चा पांव-पांव चलता और मीनू चलती उसकी गोदी पर। वह पानी भरती तो मीनू उसके साथ होती, दाल दलती तो मीनू उसके साथ होती और बरतन मलती तो मीनू भी उसके साथ छोटी-छोटी कटोरियां और गिलास मलती दीख पड़ती। अन्त को बात इतनी बढ़ी कि वह मीनू को अपनी पीठ से बांधकर झाड़ू देने लगी। उसका नाम था—लखिया।

लखिया और मीनू के इस स्नेह सम्बन्ध से लखिया के बच्चे को जो अभाव ज्ञात हुआ उसकी पूर्ति मैं उसे मीनू के फल और मिठाइयां दे देकर करने लगी। वह प्रायः मेरे ही पास खेला करता। फल और मिठाइयां खाने से इस बच्चे को और पानी भरने, बरतन मलने तथा बगीचा सींचने से मीनू को थोड़े ही दिनों में स्वास्थ्य का लाभ होता दिखाई पड़ा।

मैं बहुत सोचती थी कि यह लखिया कौन है? वह जेल क्यों आई? एक दिन अचानक मैंने मेट्रन से पूछा, जिसका उत्तर मिला—'ओह, यह बड़ी खतरनाक औरत है। इसने पुलिस को मारा है—पुलिस को। पर हमने इसका दिमाग ठीक कर दिया है। आपको कोई तकलीफ़ तो नहीं देती?'

अचानक मुझे उन बच्चों का खयाल आ गया। उनकी मां भी तो पुलिस को मारने के कारण जेल भेजी गई थी और उसके साथ भी तो एक छोटा बच्चा था। पूछना मैंने कई बार चाहा पर लखिया की गम्भीर और उदास मुद्रा देखकर हिम्मत मेरी एक बार भी न हुई।

एक दिन रात को खूब पानी बरसा। खूब दहाड़-दहाड़ कर बादल गरजे और कड़क-कड़क कर बिजली चमकी। मुझे अपने बच्चों की याद आई। छोटा लड़का डरा होगा। दूसरे पलंग पर सोने पर भी वह बादलों के गरजते ही मेरे पास आकर सो जाता था। इसके साथ मुझे उन तीनों बच्चों की याद आई जो

बेचारे पुल के नीचे सोते थे। कहीं............आगे सोचने की मेरी हिम्मत न पड़ी। मैंने प्रार्थना की 'हे ईश्वर ! सब माताओं के बच्चों को अच्छी तरह रख और सबके बाद मेरे बच्चों की भी रक्षा कर।'

( ४ )

जेल में मेरे पास अखबार आया करते थे। जेल की सभी कैदी स्त्रियां लड़ाई की खबरें सुनने को उत्सुक रहा करती थीं। उन्हें विश्वास था कि एक दिन ऐसा होगा जब जेल के फाटक टूट जायंगे और अवधि से पहले ही उनका छुटकारा हो जायगा। मैं भी उन्हें योरोप की लड़ाई और भारत के सत्याग्रह की खबरें सुना दिया करती थी।

उस दिन शाम को अखबार आया और पढ़ते-पढ़ते मेरा जी धक से रह गया ! जबलपुर की ही खबर थी—

'कल रात एकाएक पानी बरसा और खूब बरसा। जेल के पास के नाले में तीन ग़रीब बच्चे बह गये। उन तीनों की लाशें मिली हैं। बहुत खोज करने पर भी उनकी शनाख्त नहीं हो सकी। दो लड़कियां और एक लड़का। ऐसा सुना गया है कि वे गाना गाकर भीख माँगा करते थे।'

मेरे घर पर आकर गाने वाले उन तीन बच्चों का चित्र हठात् मेरी आंखों के सामने खिच गया और ऐसा जान पड़ा जैसे दूर से कोई गा रहा है—

"मैं तो डूबत हूं मझधार पड़ी,
मोरी बैयां पकड़ के उठा लेना।"

अखबार रखकर मैं आंसू रोकने का प्रयत्न करने लगी। अचानक मेरे मुंह से निकल गया—'बेचारे बच्चे !'

लखिया पास ही मेरे लिए चाय तैयार कर रही थी। उसने पूछा—'क्या खबर है, बाई साहब ! अरे ! उदास क्यों हो गई ? बच्चों की याद आ रही है ?'

मैं उसे कुछ भी उत्तर न दे सकी। वह फिर बोली—'थोड़े ही दिन तो और है, बाई साहब ! कट जायेंगे। फिर बच्चे अपने बाप के साथ तो हैं, फिक्र क्यों करती हो'।

उसकी ओर देखनेकी मेरी हिम्मत नहीं थी पर मुझे ऐसा जान पड़ा जैसे उसने बात खत्म होते न होते एक गहरी सांस ली और आंखों के आंसू पोंछ लिये। मैंने अपनी सब शक्ति संचित करके उससे पूछा—'लखिया ! तेरे और बच्चे हैं, या यही एक है' ।

आंखों में आंसू ओठों पर एक क्षीण मुस्कराहट के साथ वह बोली—'एक ही क्यों बाई साहब, (मेरी बच्ची की ओर इशारा करके) यह बिटिया भी तो है'' ।

मैंने कहा—'ये तो जेल के भीतर है । जेल के बाहर कितने हैं ?'

लखिया एक गहरी सांस लेकर बोली—'जेल के बाहर बाई साहब ! वे तो भगवान् के हैं-अपने कैसे कहूं ?'

और इसके बाद वह अखबार की खबर पूछती ही रह गई पर मैं उसे कुछ भी न बतला सकी ।

# डॉ० रांगेय राघव

हिन्दी की तरुण पीढी में जो कृतिकार अपनी असाधारण प्रतिभा और कृतित्व के बल पर साहित्य-महारथियों की अग्रिम पंक्ति में सहसा आकर बैठे है, उनमें रांगेय राघव निश्चितं रूप से अग्रणी कहे जा सकते हैं। अगाध पाँडित्य और प्रतिभा के धनी डा० रांगेय राघव ने साहित्य की हर विधा में अपनी लेखनी का चमत्कार दिखाया है। काव्य, कहानी, उपन्यास और निबन्ध सभी में उनकी समान रूप से गति रही है, किन्तु खेद का विषय है कि ऐसी महान् प्रतिभा का अन्त अभी सन् १९६२ में मात्र ३८ वर्ष की अल्पायु में ही हो गया। उनकी प्रकाशित कृतियों की कुल संख्या डेढ सौ के आसपास है।



'गदल' शीर्षक उनकी कहानी इतनी लोकप्रिय हुई है कि अनेक विदेशी भाषाओं में भी उसका अनुवाद हो चुका है।

'पारिवारिक जीवन' की एक छोटी सी घटना का बडा मार्मिक एवं संवेदनशील चित्रण इस कहानी में हुआ है।

**प्रमुख रचनाएँ :-**

**कहानी संग्रह** :—अंगारे न बुझे, साम्राज्य का वैभव, देव-दासी, चीवर आदि।

**उपन्यास**:—घरौंदे, मुर्दों का टीला, सीधासाधा रास्ता, विशाद-मठ, कब तक पुकारूं, राई और पर्वत, छोटी सी बात, दायरे, अंधेरा-रास्ता और हुजूर आदि।

**कविता** :—पिघलते पत्थर, मेधावी, अजय खंडहर

—**संपादक**

# गदल

बाहर शोर-गुल मचा। डोड़ी ने पुकारा—कौन है?

कोई उत्तर नहीं मिला! आवाज़ आई—हत्यारिन! तुझे कतल कर दूंगा!

स्त्री का स्वर आया—करके तो देख! तेरे कुनवे को डायन बनके न खा गयी, निपूते!

डोड़ी बैठा न रह सका। बाहर आया।

—क्या करता है, क्या करता है, निहाल?—डोड़ी बढ़कर चिल्लाया—आख़िर तेरी मैया है।

—मैया है! कहकर निहाल हट गया।

—अरे तू हाथ उठाके तो देख! स्त्री ने फुफकारा—कढ़ी खाये! तेरी सीक पर बिलियाँ चलवा दूं! समझ रखियो! मत जान रखियो, हां! तेरी आसरतू नहीं हूं।

—भाभी! डोड़ी ने कहा—क्या बकती है? होश में आ!

वह आगे बढ़ा। उसने मुड़कर कहा—जाओ सब! तुम सब लोग जाओ!

निहाल हट गया। उसके साथ ही सब लोग इधर उधर हो गये।

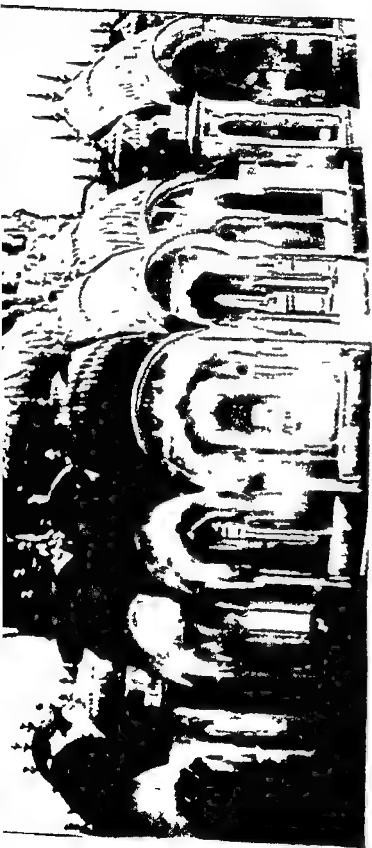
डोड़ी निस्तब्ध छप्पर के नीचे लगा बरैंडा पकड़े खड़ा रहा। स्त्री वहीं बिखरी हुई-सी बैठी रही। उसकी आँखों में आग-सी जल रही थी।

उसने कहा—मैं जानती हूं, निहाल में इतनी हिम्मत नहीं। यह सब तैंने किया है, देवर!

हां, गदल! डोड़ी ने धीरे से कहा—मैंने ही किया है।

गदल सिमट गयी। कहा—क्यों, तुझे क्या जरूरत थी?

डोड़ी कह नहीं सका। वह ऊपर से नीचे तक झनझना उठा। पचास साल



का वह लम्बा खारी गूजर, जिसकी मूंछे
सा लगता था। उसके कन्धे की चौड़ी
पड़ रहा था, उसके शरीर पर मोटी फ
उतरने के पहले ही भूल देकर चुस्त सी
हाथ कर्रा था और वह इस समय निस्त

स्त्री उठी। वह लगभग ४५ व
भी आयु के धुंधलके में अब मैला-सा
था कि वह फुर्तीली थी। जीवन भर क
पड़ने पर भी, उसकी फुर्ती अभी तक

—तुझे शरम नहीं आती गद

—क्यों, शरम क्यों आयेगी ?-

डोड़ी क्षण भर सकते में पड़ ग
शरम क्यों आयेगी इसे ? शरम तो उसे

—निहाल ! डोड़ी चिल्लाया—

फिर आवाज बन्द हो गयी।

गदल ने कहा—मुझे क्यों बुल

डोड़ी ने इस बात का उत्तर न

—नही, गदल ने कहा—खा
खेत होकर लौट रही थी। रास्ते में
रही थी।

डोड़ी ने पुकारा—निहाल ! व

भीतर से किसी स्त्री की ढीठ
वैयर आई हैं, उन्हें क्या गरीब खारियो

कुछ स्त्रियों ने ठहाका लगाया

निहाल चिल्लाया—सुन ले, म
की तो तूने नाक कटा कर छोड़ी।

गुन्ना मरा, तो पचपन बरस का था। गदल विधवा हो गयी। गदल का बड़ा बेटा निहाल तीस बरस के पास पहुंच रहा था। उसकी बहू दुल्ली का बड़ा बेटा सात का, दूसरा चार का और तीसरी छोरी थी जो उसकी गोद में थी। निहाल से छोटी तरा-ऊपर की दो बहिनें थीं चम्पा और चमेली, जिनका क्रमशः भाज़ और विस्वारा गांवों में ब्याह हुआ था। आज इनकी गोदियों से उनके लाल उतरकर धूल में घुट्टुरुवन चलने लगे थे। अंतिम पुत्र नारायन अब बाईस का था, जिसकी बहू दूसरे बच्चे की मां होने वाली थी। ऐसी गदल, इतना बड़ा परिवार छोड़कर चली गई थी और बत्तीस साल के एक लौहरे गूजर के यहाँ जा बैठी थी।

डोड़ी गुन्ना का सगा भाई था। बहू थी, बच्चे भी हुए। सब मर गए। अपनी जगह अकेला रह गया। गुन्ना ने बड़ी-बड़ी कही पर वह फिर अकेला ही रहा, उसने ब्याह नहीं किया, गदल ही के चूल्हे पर खाता रहा, कमाकर लाता, तो उसी को दे देता, उसी के बच्चों को अपना मानता, कभी उसने अलगाव नहीं किया। निहाल अपने चाचा पर जान देता था। और फिर खारी गूजर अपने को लौहरों से ऊंचा समझते थे।

गदल जिसके घर जा बैठी थी, उसका पूरा कुनबा था। उसने गदल की उम्र नहीं देखी, यह देखा कि खारी औरत है, पड़ी रहेगी। चूल्हे पर दम फूंकने वाली की जरूरत भी थी।

आज ही गदल सवेरे गयी थी। और शाम को उसके बेटे उसे फिर बांध लाये थे। उसके नये पति मौनी को अभी पता भी नहीं हुआ होगा। मौनी रंडुवा था। उसकी भाभी जो पाँव फैलाकर मटक-मटककर छाछ बिलोती थी, दुल्लो सुनेगी, तो क्या कहेगी?

गदल का मन विक्षोभ से भर उठा।

( ३ )

आधी रात हो चली थी। गदल वहीं पड़ी थी। डोड़ी वहीं बैठा चिलम फूंक रहा था।

उस सन्नाटे में डोड़ी ने कहा—गदल!

—क्या है? गदल ने धीरे से कहा।

—तू चली गयी न?

गदल बोली नहीं। डोड़ी ने फिर कहा—सब चले जाते हैं। एक दिन तेरी देवरानी चली गयी, फिर एक-एक कर के तेरे भतीजे भी चले गये। भैया भी चला गया। पर तू जैसे गई, वैसे तो कोई भी नहीं गया। जग हंसता है, जानती है?

गदल ने बुरबुराया—जग हंसाई से मैं नहीं डरती, देवर? जब चौदह की थी, तब तेरा भैया मुझे गाँव में देख गया था। तू उसके साथ तेल पिया लट्ठ लेकर मुझे लेने आया था न तब? तब मैं आई थी कि कि नहीं? तू सोचता होगा कि गदल की उमर गयी, अब उसे खसम की क्या जरूरत है? पर जानता है, मैं क्यों गयी?

—नहीं।

—तू तो बस यही सोचा करता होगा कि गदल गयी,अब पहले-सा रोटियों का आराम नहीं रहा। बहुएं नही करेंगी तेरी चाकरी, देवर! तूने भाई से और मुझसे निभायी, तो मैंने भी तुझे अपना ही समझा! बोल, झूठ कहती हूं?

—नहीं, गदल। मैंने कब कहा।

—बस यही बात है, देवर! अब मेरा यहाँ कौन है! मेरा मरद तो मर गया। जीते जी मैंने उसकी चाकरी की, उसके नाते उसके सब अपनों की चाकरी बजायी। पर जब मालिक ही न रहा, तो काहे को हुड़कम्प उठाऊं! यह लड़के, यह बहुएं। मैं इनकी गुलामी नहीं करूंगी।

—पर क्या यह सब तेरी औलाद नहीं, बावरी। बिल्ली तक अपने जायों के लिए सात घर उलट फेर करती है, फिर तू तो मानुस है। तेरी माया-ममता कहाँ चली गयी?

—देवर। तेरी कहाँ चली गयी थी, जो तूने फिर ब्याह न किया!

—मुझे तेरा सहारा था, गदल!

—कायर! भैया तेरा मरा, कारज किया बेटे ने और फिर जब सब ही

गया, तब तू मुझे रखकर घर नहीं बसा सकता था ! तूने मुझे पेट के लिए पराई ड्यौढ़ी लंघवायी। चूल्हा मैं तब फूंकूं, जब मेरा कोई अपना हो। ऐसी बांदी नहीं हूं कि मेरी कुहनी बजे, औरों की बिछिया झनके। मैं तो पेट तब भरूंगी, जब पेट का मोल कर लूंगी। समझा देवर, तूने तो नहीं कहा तब। अब कुनबे की नाक पर चोट पड़ी, तब सोचा,. तब न सोचा, जब तेरी गदल को बहुओं ने आंखें तरेर कर देखा। अरे, कौन किसी की परवाह करता है !

—गदल ! –डोड़ी ने भर्राये स्वर से कहा—मैं डरता था।

—भला क्यों तो ?

—गदल, मैं बुड्ढा हूं। डरता था, जग हंसेगा। बेटे सोचेंगे, शायद चाचा का अम्मा से पहले ही नाता था, तभी तो चाचा ने दूसरा ब्याह नहीं किया ! गदल, भैया की भी बदनामी होती न ?

—अरे, चल रहने दे !–गदल ने उत्तर दिया–भैया का बड़ा खयाल रहा तुझे ! तू नहीं था कारज में उनके क्या ? मेरे सुसर मेरे थे, तब तेरे भैया ने बिरादरी को जिमाकर ओठों से पानी छुलाया था अपने और तुम सबने कितने बुलाये ? तू भैया दो बेटे। यही भैया है, यही बेटे हैं ? पच्चीस आदमी बुलाये कुल। क्यों आखिर ? कह दिया लड़ाई में कानून है। पुलिस पच्चीस से ज्यादा होते ही पकड़ ले जायगी ! डरपोक कहीं के ! मैं नहीं रहती ऐसों के।

हठात्—डोड़ी का स्वर बदला। कहा–मेरे रहते तू पराये मरद के जा बैठेगी ?

—हां।

—अबके तो कह ! – वह उठकर बढ़ा।

—सौ बार कहूं लाला – गदल पड़ी-पड़ी बोली। डोड़ी बढ़ा।

—बढ़ ! – गदल ने फुफकारा।

डोड़ी रुक गया। गदल देखती रही। डोड़ी जाकर बैठ गया। गदल देखती रही। फिर हंसी। कहा तू मुझे मारेगा ! तुझ मे हिम्मत कहाँ है, देवर ? मेरा नया मरद है न ? मरद है। इतनी सुन तो ले भला। मुझे लगता है, तेरा भइया ही फिर मिल गया है मुझे। तू ? – वह रुकी – मरद है ? अरे कोई बैयर से

खिसियाता है। रुककर जो तू मुझे मारता, तो मैं समझती, तू अपनापा मानता है। मैं इस घर में न रहूँगी?

डोडी देखता ही रह गया। रात गहरी हो गयी। गदल ने लहँगे की पर्तें फैलाकर तन ढक लिया। डोडी ऊँघने लगा।

( ४ )

ओसारे में दुल्लो ने अँगड़ाई लेकर कहा — आ गयीं देवरानीजी! रात कहाँ रहीं?

मुर्गा कूक गया था। आकाश में पौ फट रही थी। बैल अब उठकर खड़े हो गये थे। हवा में एक ठंडक थी।

गदल ने तड़ाक से जवाब दिया—री, जिठानी मेरी! हुकुम नहीं चला मुझ पर। तेरी-जैसी बेटियाँ हैं मेरी। देवर के नाते देवरानी हूँ, तेरी लूटी नहीं।

दुल्लो सकपका गयी। मौनी उठा ही था। भनाया हुआ आया। बोला — कहाँ गयी थी?

गदल ने घूँघट खींच लिया, पर आवाज नहीं बदली। कहा—वहीं ले गये मुझे घेर कर! मौका पाके निकल आयी।

मौनी रुक गया। मौनी का बाप बाहर से ही ढोर हाँक ले गया। मौनी रुका।

कहाँ जाता है? — गदल ने पूछा।

— खिलहार।

— पहले मेरा फैसला कर जा। — गदल ने कहा।

दुल्लो उस अधेड़ स्त्री के नखरे देखकर अचरज में खड़ी रही।

— कैसा फैसला? — मौनी ने पूछा। वह उस बड़ी स्त्री से डर गया था।

— अब क्या तेरे घर भर का पीसना पीसूँगी मैं? — गदल ने कहा — हम तो दो जने हैं। अलग करेंगे, खायेंगे। — उसके उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही वह कहती रही — कमाई शामिल करो, मैं नहीं रोकती, पर भीतर तो अलग-अलग करें।

मौनी क्षण भर सन्नाटे में खड़ा रहा। दुल्लो तिनककर निकली। बोली—अब चुप क्यों हो गया, देवर? बोलता क्यों नहीं? मेरी देवरानी लाया है कि सास! तेरी बोलती क्यों नहीं कढ़ती? ऐसी न समझियो तू मुझे! रोटी तवा पर पलटते मुझे भी आँच नहीं लगती, जो मैं इसकी खरी-खोटी सुन लूँगी, समझा? मेरी अम्मा ने भी मुझे चूल्हे की मट्टी खाके ही जना था। हाँ!

—अरी तो, सौत! —गदल ने पुकारा—मट्टी न खाके आयी, सारे कुनबे को चबा जायेगी, डायन! ऐसी नहीं तेरी गुड़ की भेली है, जो न खायेंगे हम, तो रोटी गले में फंदा मार जायेगी।

मौनी उत्तर नही दे सका। वह बाहर चला गया।

दुपहर हो गयी थी। दुल्लो बैठी चरखा कात रही थी।

नरायन ने आकर आवाज दी—कोई है?

दुल्लो ने घूँघट काढ़ लिया। पूछा—कौन हो?

नरायन ने खून का घूँट पीकर कहा—गदल का बेटा हूं।

दुल्लो घूँघट में हँसी। पूछा—छोटे हो कि बड़े?

—छोटा।

—और कितने हैं?

—कित्ते भी हों। तुझे क्या?—गदल ने निकलकर कहा।

—अरे आ गयी!—कहकर दुल्लो भीतर भागी।

—आने दे आज उसे। तुझे बता दूँगी, जिठानी!—गदल ने सिर हिलाकर कहा।

—अम्मा!—नरायन ने कहा—यह तेरी जिठानी है?

—क्यों आया है तू, यह बता!—गदल झल्लायी।

—दण्ड भरवाने आया हूं, अम्मा!—कहकर नरायन आगे बैठने को बढ़ा।

—वही रह!—गदल ने कहा।

उसी समय लोटा डोर लिये मौनी लौटा। उसने देखा कि गदल ने अपने कड़े और हँसुली उतारकर फेंक दी और कहा—भर गया दण्ड तेरा। अब मत आइयो कोई। समझा! समझ लीजो थाने में रपट कर दूँगी कि मेरे मरद का सब माल दबाकर बहुओं के कहने से बेटों ने मुझे निकाल दिया है।

नरायन का मुँह स्याह पड़ गया। वह गहने उठाकर चला गया। मौनी मन-ही-मन शंकित-सा भीतर आया।

दुल्लो ने शिकायत की—सुना तूने, देवर! देवरानी ने गहने दे दिये। घुटना आखिर पेट को ही मुड़ा। ऐसे चार जगह बैठेगी, तो बेटों के खेत की डोर पर डंडा-खूंआं तक लग जायेंगे, पक्का चबूतरा घर के आगे बगबगायेगा। समझा देती हूं। तुम भोले-भाले ठहरे। तिरिया चरित्तर तुम क्या जानो। धन्धा है यह भी। अब कहेगी, फिर बनवा मुझे।

गदल हँसी, कहा—वाह, जिठानी! पुराने मरद का मोल नये मरद से तेरे घर की बैयर ही चुकवाती होंगी। गदल तो मालकिन बन कर रहती है, समझी! बाँदी बनकर नहीं। चाकरी करूँगी तो अपने मरद की, नहीं तो बिधना मेरे ठेंगे पर। समझी! तू बीच में बोलने वाली कौन?

दुल्लो ने रोष से देखा और पांव पटकती चली गयी!

मौनी ने देखा और कहा—बहुत बढ़-बढ़कर बातें मत हाँक, समझ ले, घर में बहू बन के रह!

—अरे तू तो तब पैदा भी नहीं हुआ था, बालम!—गदल ने मुस्कराकर कहा—तब से मैं सब जानती हूं। मुझे क्या सिखाता है तू? ऐसा कोई मैंने काम नहीं किया है, जो बिरादरी के नेम के बाहर हो, जब तू देखे। मैंने ऐसी कोई बात की हो, तो हजार बार रोक, पर सौत की ठसक नहीं सहूंगी।

—तो बताऊँ तुझे!—वह सिर हिलाकर बोला।

गदल हँसकर ओबरी में चली गयी। और काम में लग गयी।

( ५ )

ठंडी हवा तेज हो गयी थी। डोड़ी चुपचाप बाहर छप्पर में बैठा हुक्का पी रहा था। पीते पीते ऊब गया और उसने चिलम उलट दी और फिर बैठा रहा।

खेत से लौटकर निहाल ने बैल बांधे, न्यार डाला और कहा—काका!

डोड़ी कुछ सोच रहा था! उसने सुना नहीं।

—काका!—निहाल ने स्वर उठाकर कहा।

—हैं!—डोड़ी चौंक उठा—क्या है? मुझसे कहा कुछ?

—तुमसे न कहूंगा, तो कहूंगा किससे ? दिन भर तो तुम मिले नहीं। चिम्मन ठठेरा कहता था, तुमने दिन भर मनमौजी बाबा की धूनी के पास बिताया। यह सच है ?

—हाँ, बेटा, चला तो गया था।

—क्यों गये थे भला ?

—ऐसे ही जी किया था, बेटा।

—और कस्बे से बनिये का आदमी आया था, घी कटऊ क्या कराया, मैंने कहा नहीं है, वह बोला लेके जाऊंगा। झगड़ा होते-होते बचा।

—ऐसा नहीं करते, बेटा।—डोड़ी ने कहा—बौहर से कोई झगड़ा मोल लेता है ?

निहाल ने चिलम उठायी, कण्डों में से आंच बीन कर धरी और फूँक लगाता हुआ आया। कहा—मैं तो गया नहीं। सिर फूट जाते। नरायन को भेजा था।

—कहाँ !—डोड़ी चौंका।

—उसी कुलच्छनी कुलबोरनी के पास !

—अपनी मां के पास ?

—न जाने तुम्हें उससे क्या है, अब भी तुम्हें उस पर गुस्सा नहीं आता ! उसे मां कहूंगा मैं ?

—पर बेटा, तू न कह, जग तो उसे तेरी मां ही कहेगा। जब तक मरद जीता है, लोग बैयर को मरद की वहू कहकर पुकारते हैं, जब मरद मर जाता है, तो लोग उसे बेटे की अम्मा कहकर पुकारते हैं। कोई नया नेम थोड़ा ही है।

निहाल भुनभुनाया। कहा—ठीक है, काका, ठीक है, पर तुमने अभी तक यह तो पूछा ही नहीं कि क्यों भेजा था उसे ?

—हाँ, बेटा।—डोड़ी ने चौंककर कहा—यह तो तूने बताया ही नहीं ! बता न ?

—दण्ड भरवाने भेजा था। सो पंचायत जुड़वाने के पहले ही उसने तो गहने उतार फेंके।

डोड़ी मुस्कराया। कहा—तो वह यह जता रही है कि घरवालों ने पंचायत भी नहीं जुड़वायी ? यानी हम उसे भगाना ही चाहते थे। नरायन ले आया ?

—हां।

—डोड़ी सोचने लगा।

—मैं फेर आऊं ?—निहाल ने पूछा।

—नहीं, बेटा।—डोड़ी ने कहा—वह सचमुच रूठकर ही गयी है। और कोई बात नहीं है। तूने रोटी खा ली ?

—नहीं !

—तो जा। पहले खा ले।

निहाल उठ गया, पर डोड़ी बैठा रहा। रात का अंधेरा सांझ के पीछे ऐसे आ गया, जैसे कोई पत्त उलट गयी हो।

दूर ढोला गाने की आवाज आने लगी। डोड़ी उठा और चल पड़ा।

निहाल ने बहू से पूछा—काका ने रोटी खा ली ?

—नहीं तो।

निहाल बाहर आया ! काका नहीं थे।

—काका !—उसने पुकारा।

राह पर चिरंजी पुजारी गढ़वाले हनुमानजी के पट बन्द करके आ रहा था ! उसने पूछा—क्या है, रे ?

—पाय लागूं, पंडितजी।—निहाल ने कहा—काका अभी तो बैठे थे····

चिरंजी ने कहा—अरे, वह वहां ढोला सुन रहा है। मैं अभी देखकर आया हूं।

चिरंजी चला गया, निहाल ठिठका खड़ा रहा। बहू ने झांककर पूछा—क्या हुआ ?

—काका ढोला सुनने गये हैं !—निहाल ने अविश्वास से कहा—वे तो नहीं जाते थे।

—जाकर बुला ले आओ। रात बढ़ रही है। —बहू ने कहा और रोते बच्चे को दूध पिलाने लगी।

निहाल जब काका को लेकर लौटा, तो काका की देही तप रही थी।

—हवा लग गयी है और कुछ नही . —डोडी ने छोटी खटिया पर अपनी निकली टाँगें समेटकर लेटते हुए कहा—रोटी रहने दे, आज जी नहीं चाहता!

निहाल खड़ा रहा। डोड़ी ने कहा अरे, सोच तो, बेटा। मैंने ढोला कितने दिन बाद सुना है। उस दिन भैया की सुहाग रात को सुना था, या फिर आज ''

निहाल ने सुना और देखा, डोड़ी आँख मींचकर कुछ गुनगुनाने लगा था····

( ६ )

शाम हो गयी थी। मौनी बाहर बैठा था गदल ने गरम-गरम रोटी और आम की चटनी ले जाकर खाने को धर दी।

—बहुत अच्छी बनी है।—मौनी ने खाते हुए कहा—बहुत अच्छी है।

गदल बैठ गयी। कहा—तुम एक व्याह और क्यों नहीं कर लेते अपनी उमिर लायक ?

मौनी चौंका। कहा—एक की रोटी भी नहीं बनती।

—नहीं।—गदल ने कहा—सोचते होगे सौत बुलाती हूं, पर मरद का क्या ? मेरी भी तो ढलती उमिर है। जीते जी देख जाऊँगी तो ठीक है। न हो तो हुकूमत करने को तो एक मिल ही जायेगी।

मौनी हँसा। बोला—यों कह। हौंस है तुझे, लड़ने को कोई चाहिए।

खाना खाकर उठा, तो गदल हुक्का भरकर दे गयी और आप दीवार की ओट में बैठकर खाने लगी।

इतने में सुनायी दिया—अरे, इस वखत कहाँ चला ?

—जरूरी काम है, मौनी।—उत्तर मिला। पेसकार साब ने बुलवाया है।

गदल ने पहचाना। उसी के गाँव का तो था, घोट्या मैना का चुंदा गिर्राज ग्वालिया। जरूर पेसकार की गाय को चराने की बात होगी।

—अरे तो रात को जा रहा है ?–मौनी ने कहा–ले चिलम तो पीता जा।

आकर्षण ने रोका। गिर्राज बैठ गया। गदल ने दूसरी रोटी उठायी, कौर मुंह में रखा।

—तुमने सुना ?–गिर्राज ने कहा और दम खींचा।

—क्या ?–मौनी ने पूछा।

—गदल का देवर डोड़ी मर गया।

गदल का मुंह रुक गया। जल्दी से लोटे के पानी के संग कौर निगला और सुनने लगी। कलेजा मुंह को आने लगा।

····कैसे मर गया ?–मौनी ने कहा। वह तो भला-चंगा था।

—ठंड लग गई। रात उघाड़ा रह गया।

गदल द्वार पर दिखायी दी। कहा—गिर्राज !

—काकी ! गिर्राज ने कहा–सच। मरते वखत उसके मुंह से तुम्हारा नाम कढ़ा था, काकी ! बिचारा बड़ा मानस था।

गदल स्तब्ध खड़ी रही। गिर्राज चला गया।

गदल ने कहा सुनते हो ?

—क्या है री ?

—मैं जरा जाऊंगी !

—कहाँ ?—वह आतंकित हुआ।

—वहीं।

—क्यों ?

—देवर मर गया है न ?

—देवर ? अब तो वह तेरा देवर नहीं।

गदल हंसी झनझनाती हुई हंसी–देवर तो मेरा अगले जनम में भी रहेगा। वही न मुझसे रुसाई दिखाता, तो क्या यह पांव कटे बिना उस देहली से बाहर निकल सकते थे ? उसने मुझसे मन फेरा, मैंने उससे। मैंने ऐसा बदला लिया उससे।

कहते-कहते वह कठोर हो गयी।

—तू नहीं जा सकती। मौनी ने कहा।

—क्यों?—गदल ने कहा—तू रोकेगा? अरे, मेरे खास पेट के जाये मुझे रोक न पाये! अब क्या है? जिसे नीचा दिखाना चाहती थी, वही न रहा और तू मुझे रोकने वाला है कौन? अपने मन से आयी थी, रहूंगी, नहीं रहूंगी, कौन तूने मेरा मोल दिया है! इतना बोल तो लिया तू; जो होता मेरे उस घर में, तो जीभ कढ़वा लेती तेरी।

अरी चल-चल!

मौनी ने हाथ पकड़ कर उसे भीतर ढकेल दिया और द्वार पर खाट डाल कर लेटकर हुक्का पीने लगा।

गदल भीतर रोने लगी, परन्तु इतने धीरे कि उसकी सिसकी तक मौनी नहीं सुन सका। आज गदल का मन बहा जा रहा था।

रात का तीसरा पहर बीत रहा था। मौनी की नाक बज रही थी। गदल ने पूरी शक्ति लगाकर छप्पर का कोना उठाया और सांपिन की तरह उसके नीचे से रेंगकर दूसरी ओर कूद गयी।

(७)

मौनी रह-रहकर तड़पता था। हिम्मत नहीं होती थी कि जाकर सीधे गांव में हल्ला करे और लट्ठ के बल पर गदल को उठा लाये। मन करता, सुसरी की टांगे तोड़ दे। दुल्ली ने व्यंग भी किया कि उसकी लुगाई भागकर नाक कटा गयी है, खून का सा घूंट पीकर रह गया। गूजरों ने जब सुना, तो कहा—अरे बुढ़िया के लिए खून-खराबी करायेगा? और अभी तेरा उसने खरच ही क्या कराया है। दो जून रोटी खा गयी तो तुझे भी तो टिक्कड़ खिलाकर ही गयी है?

मौनी का क्रोध भड़कता। घोट्या का गिराज सुना गया था।

जिस वक्त गदल पहुंची, पटेल बैठा था। निहाल ने कहा था—खबरदार! भीतर पांव न धरियो! क्यों लौट आयी है?

पटेल चौंका था। बोला—अब क्या लेने आयी है, बहू?

गदल बैठ गयी। कहा—जब छोटी थी, तभी मेरा देवर लट्ठ बांध मेरे खसम के साथ आया था। इसी के हाथ देखती रह गयी थी मैं तो। सोचा था, मरद है, इसकी छत्तर-छाया में जी लूंगी। बताओ, पटेल, वही जब मेरे आदमी के मरने के बाद मुझे न रख सका, तो क्या करती? अरे, मैं न रही, तो इनसे क्या हुआ? दो दिन में काका उठ गया न? इनके सहारे मैं रहती तो क्या होता?

पटेल ने कहा—पर तूने बेटा बेटी की उमर न देखी, बहू!

—ठीक है,—गदल ने कहा—उमर देखती कि इज्जत, यह कहो। मेरी देवर से रार थी, खतम हो गयी। ये बेटा हैं, मैंने कोई बिरादरी के नेम के बाहर की बात की हो, तो रोककर मुझ पर दावा करो। पंचायत में जवाब दूंगी। लेकिन बेटों ने बिरादरी के मुंह पर थूका, तब तुम सब कहां थे?

—सो कब?—पटेल ने आश्चर्य से पूछा।

—पटेल न कहेंगे तो कौन कहेगा? पचीस आदमी खिलाकर टाल दिया मेरे मरद के कारज में!

—पर पगली यह तो सरकार का कानून था।

—कानून था!—गदल हंसी—सारे जग में कानून चल रहा है पटेल? दिन-दहाड़े भैंस खोलकर लायी जाती है। मेरे ही मरद पर कानून था? यों न कहोगे, बेटों ने सोचा, दूसरा अब क्या धरा है, क्यों पैसा बिगाड़ते हो? कायर कहीं के!

निहाल गरजा—कायर? हम कायर? तू सिंघनी?

—हां मैं सिंघनी!—गदल तड़पी—बोल तुझ में है हिम्मत?

—बोल!—वह भी चिल्लाया।

—जा, बिरादरी कारज में न्योता दे काका के!—गदल ने कहा।

निहाल सकपका गया। बोला—पुलिस·······

गदल ने सीना ठोककर कहा—बस?

लुगाई बकती है।—पटेल ने कहा—गोली चलेगी, तो?

गदल ने कहा—धरम-धुरन्दरों ने तो डुबा ही दी। सारी गुजरात ही डूब गयी, माधो। अब किसी का आसरा नहीं। कायर-ही-कायर बसे हैं।

फिर अचानक कहा—मैं करूं परबन्ध ?

—तू ?—निहाल ने कहा ।

—हाँ मैं !-और उसकी आँखों में पानी भर आया । कहा—वह मरते वखत मेरा नाम लेता गया है न, तो उसका प्रबन्ध मैं ही करूंगी ।

मौनी ने आश्चर्य से सुना था । गिर्राज ने ही बताया था कि कारज का जोरदार इन्तजाम है । गदल ने दरोगा को रिश्वत दी है । वह उधर आयगा ही नही । गदल बड़ा इन्तजाम कर रही है । लोग कहते हैं, उसे अपने मरद का इतना गम नही हुआ था, जितना अब लगता है ।

गिर्राज तो चला गया था, पर मौनी मे विष भर गया था । उसने उठते हुए कहा—तो गदल ! तेरी भी मन की होने दूं, सो गोला का मौनी नहीं । दरोगा का मुंह बन्द कर दे, पर उससे भी ऊपर एक दरबार है । मैं कस्बे मे वड़े दरोगा मे शिकायत करूंगा ।

( ८ )

कारज हो रहा था । पाते बैठती, जीमती, उठ जाती और कढ़ाव से पुए उतरते ।

बाहर मरद इन्तजाम कर रहे थे, खिला रहे थे । निहाल और नरायन ने लड़ाई में मंहगा नाज बेचकर जो घड़ों मे नोटो को चाँदी बनाकर डाला था, वह निकली और बौहरे का कर्जा चढ़ा । पर डाग मे लोगों ने कहा—गदल का ही बूता था । बेटे तो हार बैठे थे । कानून क्या बिरादरी से ऊपर है ?

गदल थक गयी थी । औरतों मे बैठी थी । अचानक द्वार में से सिपाही सा दीखा । बाहर आ गयी । निहाल सिर झुकाये खड़ा था ।

—क्या बात है, दीवान जी ?—गदल ने बढ़कर पूछा ।

स्त्री का बढ़कर पूछना देख दीवान सकपका गया ।

निहाल ने कहा—कहते है कारज रोक दो ।

—सो कैसे ?—गदल चौंकी ।

—दरोगा जी ने कहा है ।—दीवान जी ने नम्र उत्तर दिया ।

—क्यों ? उनसे पूछकर ही तो किया जा रहा है ।—उसका स्पष्ट संकेत

था कि रिश्वत दी जा चुकी है।

दीवान ने कहा—जानता हूं, दरोगाजी तो मेल-मुलाकात मानते हैं, पर किसी ने बड़े दरोगाजी के पास शिकायत पहुंचायी है, दरोगाजी को आना ही पड़ेगा। इसी से उन्होंने कहला भेजा है कि भीड़ छांट दो। वर्ना कानूनी कार्य-वाही करनी ही पड़ेगी।

क्षण भर गदल ने सोचा। कौन होगा वह? समझ नहीं सकी। बोली—दारोगाजी ने पहले नहीं सोचा था यह सब, अब बिरादरी को उठा दें? दीवानजी तुम भी बैठकर पत्तल परोसवा लो। होगी सो देखी जायेगी। हम खबर भेज देंगे, दरोगा आते ही क्यों हैं? वे तो राजा हैं।

दीवानजी ने कहा—सरकारी नौकरी है। चली न जायेगी? आना ही होगा उन्हें।

—तो आने दो! गदल ने चुभते स्वर से कहा—आदमी का वजन एक बार का होता है। हम बिरादरी को नहीं उठा सकते।

नरायन घबराया। दीवानजी ने कहा सब गिरफ्तार कर लिये जायंगे। समझीं! राज से टक्कर लेने की कोशिश न करो।

—अरे तो राज क्या बिरादरी से ऊपर है?—गदल ने तमककर कहा—राज के पीसे तो आज तक पिसे हैं, पर राज के लिए धरम नहीं छोड़ देंगे, सुन लो! तुम धरम छीन लो, तो हमें जीना हराम है!

गदल पांव धमाके से धरती चली गयी। तीन पांतें और उठ गयीं, अन्तिम पांत थी।

निहाल ने अंधेरे में देखकर कहा—नरायन जल्दी कर। एक पांत बची है न?

गदल ने छप्पर की छाया में से कहा—निहाल?

निहाल गया।

—डरता है?—गदल ने पूछा।

सूखे होंठों पर जीभ फेरकर उसने कहा—नहीं।

—मेरी कोख की लाज करनी होगी तुझे ।—गदल ने कहा – तेरे काका ने तुझको वेटा समझकर अपना दूसरा व्याह नामंजूर कर दिया था। याद रखना, उसके और कोई नही ।

निहाल ने सिर झुका लिया ।

भागा हुआ एक लड़का आया ।

—दादी ! – वह चिल्लाया ।

—क्या है रे ? – गदल ने सशंक होकर देखा ।

—पुलिस हथियार वन्द होकर आ रही है ।

निहाल ने गदल की ओर रहस्य -भरी दृष्टि से देखा ।

गदल ने कहा – पांत उठने मे ज्यादा देर नही है ।

लेकिन ये कब मानेगे ?

—उन्हे रोकना होगा ।

—उनके पास वन्दूकें है ।

—वन्दूकें हमारे पास भी है, निहाल । – गदल ने कहा – डांग मे वन्दूको की क्या कमी ?

—पर हम फिर क्या खायेगे !

—जो भगवान् देगा ।

वाहर पुलिस की गाड़ी का भोपू वजा । निहाल आगे वढा । दरोगा ने उतर कर कहा – यहाँ दावत हो रही है ?

निहाल भौचक रह गया । जिस आदमी ने रिश्वत ली थी, अव वह पहचान भी नही रहा था ।

—हां । हो रही है । – उसने क्रुद्ध स्वंर मे कहा ।

—पचीस आदमी से ऊपर है ?

—गिनकर हम नही खिलाते, दरोगाजी ।

मगर तुम कानून तो नही तोड़ सकते ?

कानून राज का कल का है, मगर विरादरी का कानून सदा का है, हमे राज नही लेना है, विरादरी से काम है ।

तो मैं गिरफ्तारी करूंगा।

गदल ने पुकारा – निहाल !

निहाल भीतर गया !

गदल ने कहा—पंगत खतम होने तक इन्हें रोकना ही होगा।

—फिर ?

—फिर सब को पीछे से निकाल देंगे। अगर कोई पकड़ा गया, तो बिरादरी क्या कहेगी ?

—पर ये वैसे न रुकेंगे। गोली चलायेंगे।

तू न डर। छत पर नरायन चार आदमियों के साथ बंदूकें लिये बैठा है।

निहाल कांप उठा। उसने घबराये हुए स्वर से समझाने की कोशिश की–हमारी टोपीदार है, उनकी रफल है।

—कुछ भी हो पंगत उतर जायेगी।

—और फिर ?

—तुम सब भागना।

—हठात् लालटेन बुझ गयी।

धायं-धायं की आवाज आई। गोलियां अन्धकार में चलने लगीं।

गदल ने चिल्लाकर कहा – सौगन्ध है, खाकर उठना। पर सबको जल्दी की फिकर थी।

बाहर धायं-धायं हो रही थी। कोई चिल्लाकर गिरा।

पांत पीछे से निकलने लगी।

जब सब चले गये, गदल ऊपर चढ़ी। निहाल से कहा – बेटा !

उसके स्वर की अवंट ममता सुनकर निहाल के रोंगटे उस हलचल में भी खड़े हो गये। इससे पहले कि वह उत्तर दे, गदल ने कहा – तुझे मेरी कोख की सौगन्ध है। नरायन को और बहू-बच्चों को लेकर निकल जा पीछे से।

—और तू ?

—मेरी फिकर छोड़ ! मैं देख रही हूं तेरा काका मुझे बुला रहा है !

निहाल ने बहस नहीं की। गदल ने एक बंदूकवाले से भरी बंदूक लेकर कहा—चले जाओ सब, निकल जाओ।

संतान के मोह से जकड़े हुए युवकों को आपत्ति ने अंधकार में विलीन कर दिया।

गदल ने घोड़ा दबाया। कोई चिल्लाकर गिरा। वह हंसी। विकराल हास्य उस अंधकार मे गूंज उठा।

दरोगा ने सुना, तो चौंका। औरत ! मरद कहाँ गये ! कुछ सिपाहियों ने पीछे से घिराव डाला और ऊपर चढ़ गये। गोली चलायी। गदल के पेट में लगी।

( ६ )

युद्ध समाप्त हो गया था। गदल रक्त से भीगी हुई पड़ी थी। पुलिस के जवान इकट्ठे हो गये।

दरोगा ने पूछा—यहाँ तो कोई नहीं ?

—हुजूर !—एक सिपाही ने कहा यह औरत है।

दरोगा आगे बढ़ आया। उसने देखा और पूछा—तू कौन है ?

गदल मुस्करायी और धीरे से कहा—कारज हो गया दरोगाजी। आतमा को शांति मिल गयी।

दरोगा ने झल्लाकर कहा—पर तू है कौन ?

गदल ने और भी क्षीण स्वर से कहा—जो एक दिन अकेला न रह सका, उसी की····

और सिर लुढ़क गया। उसके ओठों पर मुस्कराहट ऐसी ही दिखायी दे रही थी, जैसे अब पुराने अंधकार जलाकर लायी हुई··············पहले की बुझी लालटेन···············

# डॉ० वृन्दावनलाल वर्मा

( जन्म सन् १८६७ )

ऐतिहासिक कथा-वस्तु के आधार पर गल्प-साहित्य का सृजन करने वाले लेखकों में श्री वृन्दावनलाल वर्मा शीर्ष-स्थान के अधिकारी हैं। ऐतिहासिक उपन्यासकार के नाते उनकी तुलना बहुधा वाल्टर स्कॉट से की जाती है। 'झांसी की रानी' 'विराटा की पद्मिनी' 'मृगनयनी' और 'गढ़ कुंढार' आदि उनकी रचनायें साहित्य-जगत में पर्याप्त ख्याति अर्जित कर चुकी हैं। ऐतिहासिक उपन्यासों की भांति उन्होंने ऐतिहासिक कहानियाँ भी असाधारण कुशलता के साथ लिखी हैं। ओजस्वी संवाद और रवानी से भरी हुई भाषा उनकी लेखन-शैली की विशेषता है। उनकी इसी शैली की परिचायक है उनकी 'शरणागत' शीर्षक कहानी। इस कहानी में लेखक ने बुन्देलों की आन और शरणागतों के प्रति उनके कर्तव्य-पालन का चित्रण किया है।

—डॉ० रामचरण महेन्द्र

ठाकुर पौर मे बैठा हुक्का पी रहा था। रज्जब ने बाहर से ही सलाम करके कहा—'दाऊजू एक विनती है।'

ठाकुर ने बिना एक रत्ती-भर इधर-उधर हिले-डुले पूछा—'क्या ?'

रज्जब बोला—'मैं दूर से आ रहा हूँ। बहुत थका हूँ। मेरी औरत को जोर से बुखार आ गया है। जाड़े मे बाहर रहने से न जाने इसकी क्या हालत हो जायगी, इसलिए रात-भर के लिए कहीं दो हाथ की जगह दे दी जाय।'

'कौन लोग हो ?' ठाकुर ने प्रश्न किया।

'हूँ तो कसाई।' रज्जब ने सीधा उत्तर दिया। चेहरे पर उसके बहुत गिड़गिड़ाहट थी।

ठाकुर की बड़ी-बड़ी आँखों मे कठोरता छागई। बोला—'जानता है यह किसका घर है। यहाँ तक आने की हिम्मत कैसे की तूने ?'

रज्जब ने आशा-भरे स्वर में कहा—'यह राजा का घर है, इसीलिए शरण मे आया हुआ हूँ।'

तुरन्त ठाकुर की आँखों की कठोरता गायब हो गई। जरा नरम स्वर में बोला—किसी ने तुमको बसेरा नही दिया ?'

'नही महाराज', रज्जब ने उत्तर दिया—'बहुत कोशिश की, परन्तु मेरे खोटे पेशे के कारण कोई सीधा नही हुआ'। और वह दरवाजे के बाहर ही, एक कोने से चिपट कर, बैठ गया। पीछे उसकी पत्नी कराहती, काँपती हुई गठरी-सी बन कर सिमट गई।

ठाकुर ने कहा—'तुम अपनी चिलम लिए हो ?'

'हाँ, सरकार!' रज्जब ने उत्तर दिया।

ठाकुर बोला—'तब भीतर आ जाओ, और तमाखू अपनी चिलम मे पी लो। अपनी औरत को भीतर करलो। हमारी पौर के एक कोने मे पड़े रहना।'

जब वे दोनों भीतर आ गये तो ठाकुर ने पूछा—'तुम कब यहाँ से उठ कर चले जाओगे' ? जवाब मिला—'अन्धेरे ही में महाराज! खाने के लिए रोटियाँ बाँधे हूँ, इसलिए पकाने की जरूरत न पड़ेगी।'

# शरणागत

## ( १ )

रज्जब कसाई अपना रोजगार करके ललितपुर लौट रहा था। साथ में स्त्री थी, और गाँठ में दो सौ-तीन सौ की बड़ी रकम। मार्ग बीहड़ था, और सुनसान। ललितपुर काफी दूर था, बसेरा कहीं न कहीं लेना ही था, इसलिए उसने मड़पुरा नामक गाँव में ठहर जाने का निश्चय किया। उसकी पत्नी को बुखार हो आया था, रकम पास में थी, और बैलगाड़ी किराए पर करने में खर्च ज्यादा पड़ता, इसलिए रज्जब ने उस रात आराम कर लेना ही ठीक समझा।

परन्तु ठहरता कहाँ ? जात छिपाने से काम नहीं चल सकता था। उसकी पत्नी नाक और कानों में चांदी की बालियां डाले थी, और पैजामा पहने थी। इसके सिवा गाँव के बहुत से लोग उसको पहचानते भी थे। वह उस गाँव के बहुत-से कर्मण्य और अकर्मण्य ढोर खरीद कर ले जा चुका था।

अपने व्यवहारियों से उसने रात-भर के बसेरे के लायक स्थान की याचना की। किसी ने भी मंजूर न किया। उन लोगों ने अपने ढोर रज्जब को अलग-अलग और लुके-छिपे बेचे थे। ठहराने में तुरन्त ही तरह-तरह की खबरें फैलतीं, इसलिए सबों ने इन्कार कर दिया।

गाँव में एक ग़रीब ठाकुर रहता था। थोड़ी-सी जमीन थी, जिसको किसान जोते हुए थे। जिनका हल-बैल कुछ भी न था। लेकिन अपने किसानों से दो तीन साल का पेशगी लगान वसूल कर लेने में ठाकुर को किसी विशेष बाधा का सामना नहीं करना पड़ता था। छोटा-सा मकान था, परन्तु उसको गाँव वाले 'गढ़ी' के आदर व्यंजक शब्द से पुकारा करते थे, और ठाकुर को डर के मारे 'राजा' शब्द से सम्बोधन करते थे।

शामत का मारा रज्जब इसी ठाकुर के घर पर अपनी ज्वर-ग्रस्त पत्नी को लेकर पहुंचा।

ठाकुर ने घृणा-सूचक स्वर में कहा—कसाई का पैसा न छुएंगे।

'क्यों ?'

'बुरी कमाई है।'

उसके रुपयों पर कसाई थोड़े ही लिखा है।'

परन्तु उसके व्यवसाय से वह रुपया दूषित हो गया है।'

'रुपया तो दूसरों का ही है। कसाई के हाथ आने से रुपया कसाई का नहीं हुआ।'

'मेरा मन नहीं मानता, वह अशुद्ध है।'

'हम अपनी तलवार से उसको शुद्ध कर लेंगे।'

ज्यादा बहस नहीं हुई। ठाकुर ने साथियों को बाहर का बाहर ही टाल दिया।

भीतर देखा, कसाई सो रहा था, और उसकी पत्नी भी।

ठाकुर भी सो गया।

( ३ )

सवेरा हो गया, परन्तु रज्जब न जा सका। उसकी पत्नी का बुखार तो हल्का हो गया था, परन्तु शरीर भर में पीड़ा थी, और वह एक कदम भी नहीं चल सकती थी।

ठाकुर उसे वहीं ठहरा हुआ देखकर कुपित हो गया। रज्जब से बोला—'मैंने खूब मेहमान इकट्ठे किए हैं। गांव-भर थोड़ी देर में तुम लोगों को मेरी पौर में टिका हुआ देखकर तरह-तरह की बकवास करेगा। तुम बाहर जाओ। इसी समय।'

रज्जब ने बहुत विनती की, परन्तु ठाकुर न माना। यद्यपि गांव-भर उसके दबदबे को मानता था, परन्तु अव्यक्त लोकमत का दबदबा उसके भी मन पर था। इसलिए रज्जब गांव के बाहर सपत्नीक एक पेड़ के नीचे जा बैठा, और हिन्दू-मात्र को मन-ही मन कोसने लगा।

उसे आशा थी कि पहर आध-पहर में उसकी पत्नी की तबियत इतनी

'तुम्हारा नाम' ?

'रज्जब' ।

( २ )

थोड़ी देर बाद ठाकुर ने रज्जब से पूछा–'कहाँ से आ रहे हो' ? रज्जब ने स्थान का नाम बतलाया ।

'वहाँ किस लिए गए थे ?'

'अपने रोजगार के लिए'

'काम तो तुम्हारा बहुत बुरा है ।'

'क्या करूं, पेट के लिए करना ही पड़ता है । परमात्मा ने जिसके लिए जो रोजगार नियत किया है, वही उसको करना पड़ता है ।'

'क्या नफा हुआ ?' प्रश्न करने में ठाकुर को जरा संकोच हुआ, और प्रश्न का उत्तर देने में रज्जब को उससे बढ़कर ।

रज्जब ने जवाब दिया—'महाराज, पेट के लायक कुछ मिल गया है । यों ही । ठाकुर ने इस पर कोई जिद नहीं की ।

रज्जब एक क्षण बाद बोला–'बड़े भोर उठ कर चला जाऊंगा । तब तक घर के लोगों की तबियत भी अच्छी हो जायगी ।'

इसके बाद दिन-भर के थके हुए पति-पत्नी सो गए । रात गए कुछ लोगो ने एक बंधे इशारे से ठाकुर को बाहर बुलाया । एक फटी-सी रजाई ओढ़े ठाकुर बाहर निकल आया ।

आगन्तुकों में से एक ने धीरे से कहा–'दाऊजू, आज तो खाली हाथ लौटे हैं । कल संध्या का सुगन बैठा हैं ।'

ठाकुर ने कहा–आज जरूरत थी । खैर, कल देखा जायगा । क्या कोई उपाय किया था !'

'हाँ' आगन्तुक बोला –'एक कसाई रुपये की पोट बांधे इसी ओर आया है । परन्तु हम लोग ज़रा देर में पहुंचे । वह खिसक गया । कल देखेंगे । जरा जल्दी '

रज्जब को स्मरण हो आया कि पत्नी के बुखार के कारण अंटी का कुछ बोझ कम कर देना पड़ा है — और स्मरण हो आया गाड़ीवान का वह हठ, जिसके कारण उसको कुछ पैसे व्यर्थ ही देने पड़े थे। उसको गाड़ीवान पर क्रोध था, परन्तु उसको प्रकट करने की उस समय उसके मन में इच्छा न थी'. बातचीत करके रास्ता काटने की कामना से उसने वार्तालाप प्रारंभ किया।

'गाँव तो यहाँ से दूर मिलेगा।'

'बहुत दूर, वहीं ठहरेंगे।'

'किसके यहाँ ?'

'किसी के यहाँ भी नहीं। पेड के नीचे। कल सवेरे ललितपुर चलेंगे।,

'कल को फिर पैसा मांग उठना।'

"कैसे मांग उठूंगा ? किराया ले चुका हूं। अब फिर कैसे मांगूगा ?

जैसे आज गाँव में हठ करके मांगा था। बेटा, अगर ललितपुर होता, तो बतला देता।'

'क्या बतला देते ? क्या सेतमेंत गाडी में बैठना चाहते थे ?

'क्यों बे, क्या रुपये देकर भी सेतमेंत का बैठना कहता है ? जानता है, मेरा नाम रज्जब है। अगर बीच में गड़-बड़ करेगा, तो नालायक को यहीं छुरे से काटकर कहीं फेंक दूगा। और गाडी लेकर ललितपुर चल दूगा।'

रज्जब क्रोध को प्रकट नहीं करना चाहता था, परन्तु शायद अकारण ही वह भली भांति प्रकट हो गया।

गाडीवान ने इधर उधर देखा अन्धेरा हो गया था, चारों ओर सुनसान था। आस-पास झाडियाँ खडी थीं, ऐसा जान पडता था कि कहीं से कोई अब निकला और अब निकला। रज्जब की बात सुनकर उसकी हड्डी कांप गई। ऐसा जान पड़ा, मानों पसलियो को उसकी ठन्डी छुरी छू रही हो।

गाड़ीवान चुपचाप बैलों को हांकने लगा। उसने सोचा—'गाँव के आते ही गाड़ी छोड़कर नीचे खड़ा हो जाऊंगा, और हल्ला-गुल्ला करके गाँववालों की मदद से अपना पीछा रज्जब से छुटाऊंगा। रुपये-पैसे भले ही वापस कर दूंगा, परन्तु और आगे न जाऊंगा। कहीं सचमुच मार्ग में मार डाले !'

स्वस्थ होजायगी कि वह पैदल यात्रा कर सकेगी। परन्तु ऐसा न हुआ, तब उसने एक गाड़ी किराए पर कर लेने का निर्णय किया।

मुश्किल से एक चमार काफी किराया लेकर ललितपुर गाड़ी ले जाने के लिए राजी हुआ। इतने में दोपहर हो गई। उसकी पत्नी को बुखार हो गया। वह जाड़े के मारे थर-थर कांप रही थी, इतनी कि रज्जब की हिम्मत उसी समय ले जाने की न पड़ी। गाड़ी में अधिक हवा लगने के भय से रज्जब ने उस समय तक के लिए यात्रा को स्थगित कर दिया, जब तक कि उस बेचारी की कम-से-कम कंपकंपी बन्द न हो जाय।

घण्टे-डेढ़-घण्टे बाद उसकी कंपकंपी तो बन्द हो गई, परन्तु ज्वर बहुत तेज हो गया। रज्जब ने अपनी पत्नी को गाड़ी में डाल दिया और गाड़ीवान से जल्दी चलने को कहा।

'गाड़ीवान बोला – दिनभर तो यहीं लगा दिया अब जल्दी चलने को कहते हो!'

रज्जब ने मिठास के स्वर में उससे फिर जल्दी करने के लिए कहा।

वह बोला – 'इतने किराये मे काम नहीं चल सकेगा। अपना रुपया वापस लेलो। मैं तो घर जाता हूँ।'

रज्जब ने दांत पीसे। कुछ क्षण चुप रहा। सचेत होकर कहने लगा- 'भाई, आफत सब के ऊपर आती है। मनुष्य मनुष्य को सहारा देता, है जानवर तो देते नही। तुम्हारे भी बाल-बच्चे हैं। कुछ दया के साथ काम लो।'

कसाई को दया पर व्याख्यान देते सुनकर गाड़ीवान को हंसी आ गई।

उसको टल से मस न होते देखकर रज्जब ने और पैसे दिए। तब उसने गाड़ी हांकी।

( ४ )

पांच-छः मील चलने के बाद संध्या हो गई। गाँव कोई पास न था। रज्जब की गाड़ी धीरे-धीरे चली जा रही थी। उसकी पत्नी बुखार में बेहोश-सी थी। रज्जब ने अपनी कमर टटोली, रकम सुरक्षित बंधी पड़ी थी।

औरत जोर से कराही।

लाठीवाले उस आदमी ने अपने एक साथी से कान में कहा—'इसका नाम रज्जब है। छोड़ो चलें यहां से।'

उसने न माना। बोला—इसका खोपड़ा चकनाचूर करो। दाऊजू यदि वैसे न माने तो। असाई-कसाई हम कुछ नहीं मानते।'

'छोड़ना ही पड़ेगा', उसने कहा—इस पर हाथ नहीं पसारेंगे और न इसका पैसा छुएंगे।'

दूसरा बोला—'क्या कसाई होने के डर से? दाऊजू, आज तुम्हारी बुद्धि पर पत्थर पड़ गए हैं। मैं देखता हूं।' और उसने तुरन्त लाठी का एक सिरा रज्जब की छाती में अड़ाकर तुरन्त रुपया पैसा निकाल कर दे देने का हुक्म दिया। नीचे खड़े हुए उस व्यक्ति ने जरा तीव्र स्वर में कहा—'नीचे उतर आओ। उससे मत बोलो। उसकी औरत बीमार है।'

'हो, मेरी बला ने,' गाड़ी में चढ़े हुए लठैत ने उत्तर दिया—'मैं कसाइयों की दवा हूं।' और उसने रज्जब को फिर धमकी दी।

नीचे खड़े हुए उस व्यक्ति कहा—'खबरदार जो उसे छूआ। नीचे उतरो, नही तो तुम्हारा सिर चकनाचूर किए देता हूं। वह मेरी शरण आया था।'

गाड़ीवान लठैत झख-सी मारकर नीचे उतर आया।

नीचे वाले व्यक्ति ने कहा—'सब लोग अपने-अपने घर जाओ। राहगीरों को तंग मत करो।' फिर गाड़ीवान से बोला—'जा रे, हांक ले जा गाड़ी। ठिकाने तक पहुंचा आना, तब लौटना। नहीं तो अपनी खैर मत समझियो। और, तुम दोनों में से किसी न भी कभी इस बात की चर्चा कहीं की, तो भूसी की आग में जलाकर खाक कर दूंगा।

गाड़ीवान गाड़ी लेकर बढ गया। उन लोगों में से जिस आदमी ने गाड़ी पर चढ़ कर रज्जब के सिर पर लाठी तानी थी, उसने क्षुब्ध स्वर में कहा--

'दाऊजू, आगे से कभी आपके साथ न आऊंगा।' दाऊजू ने कहा—'न आना। मैं अकेले ही बहुत कर गुजरता हूं। परन्तु बुन्देला शरणागत के साथ कभी घात नहीं करता, इस बात की गांठ बांध लेना।'

( ५ )

गाड़ी थोड़ी दूर और चली होगी कि बैल ठिठकर खड़े हो गए। रज्जब सामने न देख रहा था, इसलिए जरा कड़ककर गाड़ीवान से बोला—'क्यों बे बदमाश, सो गया क्या ?'

अधिक कड़क के साथ सामने रास्ते पर खड़ी हुई एक टुकड़ी में से किसी के कठोर कंठ से निकला—'खबरदार जो आगे बढ़ा।'

रज्जब ने सामने देखा कि चार-पांच आदमी बड़े-बड़े लट्ठ बांधकर न जाने कहाँ से आए हैं। उनमें से तुरन्त ही एक ने बैलों की जुआरी पर लट्ठ पटका और दो दाएं-बाएं आकर रज्जब पर आक्रमण करने को तैयार हो गए।

गाड़ीवान गाड़ी छोड़कर नीचे जा खड़ा हुआ बोला—'मालिक मैं तो गाड़ीवान हूं। मुझसे कोई सरोकार नहीं।'

'यह कौन है ?' एक ने गरज कर पूछा।

गाड़ीवान की घिग्घी बँध गई। कोई उत्तर न दे सका।

रज्जब ने कमर की गाँठ को एक हाथ से संभालते हुए बहुत ही नम्र स्वर में कहा—'मैं बहुत गरीब आदमी हूं। मेरे पास कुछ नहीं है। मेरी औरत गाड़ी में बीमार पड़ी है। मुझे जाने दीजिए।'

उन लोगों में से एक ने रज्जब के सिर पर लाठी उबारी। गाड़ीवान खिसकना चाहता था कि दूसरे ने उसको पकड़ लिया।

अब उसका मुंह खुला। बोला महाराज मुझको छोड़ दो। मैं तो किराये से गाड़ी लिए जा रहा हूं। गांव में खाने के लिए तीन-चार आने के पैसे ही हैं।'

'और यह कौन है ? बतला।' उन लोगों में से एक ने पूछा।

गाड़ीवान ने तुरन्त उत्तर दिया—'ललितपुर का एक कसाई।'

रज्जब के सिर पर जो लाठी उबारी गई थी, वह वहीं रह गई। लाठी वाले के मुंह से निकला—'तुम कसाई हो ? सच बतलाओ !'

'हां, महाराज !' रज्जब ने सहसा उत्तर दिया—मैं बहुत गरीब हूं। हाथ जोड़ता हूं मुझको मत सताओ। मेरी औरत बहुत बीमार है।'

# मेरा वतन

उसने सदा की भांति तहमद लगा लिया था और फैज़ ओढ़ ली थी। उसका मन कभी-कभी साईकिल के ब्रेक की तरह तेजी से झटका देता था, परन्तु पैर यन्त्रवत् आगे बढ़ते चले जाते थे। यद्यपि इस शक्ति-प्रयोग के कारण वह बेतरह कांप उठता था, पर उसकी गति पर अंकुश नहीं लगता था। देखने वालों के लिए वह एक अर्द्ध-विक्षिप्त से अधिक समझदार नहीं था। वे अक्सर उसका मजाक उड़ाना चाहते थे। वे कहकहे लगाते और ऊंचे स्वर में गालियां पुकारते, पर जैसे ही उसकी दृष्टि उठती–न जाने उन निरीह, भावहीन, फटी-फटी आंखों में क्या होता था–वे सहम जाते; सोडा वाटर के तूफान की तरह उठने वाले कहकहे मर जाते और वह नजर दिल की अन्दरूनी वस्ती के शोले की तरह सुलगती हुई फिर नीचे झुक जाती। वे फुसफुसाते–'जरूर इसका सब-कुछ लुट गया है'·····इसके रिश्तदार मारे गए हैं'·····नहीं, नहीं, ऐसा लगता है कि काफ़िरों ने इसके बच्चों को इसी के सामने आग में भून दिया है या भालों की नोक पर टिकाकर तब तक घुमाया है जब तक उनकी चीख-पुकार बिल्ली की मिमियाहट से चिड़िया के बच्चे की चीं-चीं में पलटती हुई खत्म नहीं हो गई है।'

'और यह सब देखता रहा है।'

'हां! यह देखता रहा है। वही खौफ़ इसकी आंखों में उत्तर आया है। उसी खौफ़ ने इसके रोम-रोम को जकड़ लिया है। वह खौफ़ इसके लहू में इतना घुल-मिल गया है कि इसे देखकर डर लगता है।'

'डर'–किसी ने कहा था–'इसकी आंखों में मौत की तस्वीर है, वह मौत, जो कत्ल, खूंरेजी और फांसी का निज़ाम संभालती है।'

एक बार एक राह-चलते दर्दमन्द ने एक दूकानदार से पूछा–'यह कौन है?'-

# श्री विष्णु प्रभाकर

(जन्म सन् १९१२)

नई पीढ़ी के यशस्वी कथाकारों में श्री विष्णु प्रभाकर का नाम विशिष्ट स्थान का अधिकारी है। जीवन का सूक्ष्म दर्शन तथा उसकी कलात्मक विवेचना उनकी लेखनी की विशिष्टता है। जन-जीवन का स्वाभाविक चित्रण करने में वे सिद्धहस्त हैं। उनके साहित्य में जहाँ समाज में व्याप्त शोषण और उत्पीड़न का चित्रण मिलता है, वहाँ राष्ट्रीय विचारधारा भी समानरूप से प्रवाहमान मिलती हैं।

'मेरा वतन' शीर्षक कहानी उनकी राष्ट्रीय-विचारधारा का चित्रण करने वाली प्रतिनिधि रचना है।

'विष्णुजी' कथाकार के साथ-साथ एक कुशल नाटक लेखक और उपन्यासकार भी हैं। 'निशिकांत' 'तटके बंधन और 'स्वप्नमयी' इनकी औपन्यासिक कृतियाँ हैं, तो 'डाक्टर', 'इन्सान', 'मां का बेटा' और 'समाधि' आदि उनकी प्रसिद्ध नाट्य रचनाएँ है। उनके कथा संग्रहों में 'आदि से अन्त', 'रहमान का बेटा', 'जीवन-पराग', 'संघर्ष के बाद' और 'जिन्दगी के थपेड़े' पर्याप्त प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके हैं।

—मनोहर प्रभाकर

खण्डहर की शक्ल में पलट चुकी थीं, उसकी नजर और नजर के साथ उसके मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार सभी को अपनी ओर खींच लेती थीं और फिर उसे जो-कुछ याद आता, वह उसे पैर के तलुए से होकर सिर में निकल जाने वाला सूली की तरह काटता हुआ, उसके दिल के कोने में जा बैठता था। इसी कारण वह आज तक मर नहीं सका था, केवल सिसकियाँ भरता था—वे सिसकियां जिनमें न शब्द थे, न आँसू। वे सूखी हिचकियों की तरह उसे वेजान किये हुए थीं।

सहसा उसने देखा – सामने उसका अपना मकान आ गया है। उसके अपने दादा ने उसे बनाया था। उसके ऊपर के कमरे में उसके पिता का जन्म हुआ था। उसी कमरे में उसने आंखें खोली थीं और उसी कमरे में उसके बच्चों ने पहली बार प्रकाश-किरण का स्पर्श पाया था। उस मकान के कण-कण में उसके जीवन का इतिहास अंकित था। उसे फिर बहुत सी कहानियां याद आने लगीं। वह तब उन कहानियों में इतना डूब गया था कि उसे परिस्थिति का तनिक भी ध्यान नहीं रहा। वह जीने पर चढ़ने के लिए आगे बढ़ा और जैसा कि वह सदा करता था उसने घण्टी पर हाथ डाला। बे-जान घन्टी शोर मचाने लगी और तभी उसकी नींद टूट गई। उसने अपने चारों ओर देखा। वहाँ सब एक ही तरफ के आदमी नहीं थे। वे सब एक ही ज़बान नहीं बोलते थे। फिर भी उनमें ऐसा कुछ था जो उन्हें एक कर रहा था और वह इस एके में अपने लिए कोई जगह नहीं पाता था। उसने तेजी से आगे बढ़ जाना चाहा, पर तभी ऊपर से एक व्यक्ति उतर आया। उसने ढीला पाजामा और कुरता था, पूछा—'कहिए जनाब।'

वह अचकचाया – 'जी।'

'ज़नाब किसे पूछते थे?'

'जी, मैं पूछता था कि मकान खाली है।'

ढ़ीले पाजामे वाले व्यक्ति ने उसे ऐसे देखा कि जैसे वह कोई चोर या उठाईगिरा हो। फिर मुंह बनाकर तसल्ली से जवाब दिया – 'ज़नाब! तशरीफ ले जाइए वरना·····' आगे उसने क्या कहा यह सुनने के लिए नहीं रुका, बढ़ा चला गया। उसकी गति में तूफान भर उठा; उसके मस्तिष्क में बवंडर उठ खड़ा

दूकानदार ने जवाब दिया—"मुसीबतज़दा है, जनाब ! अमृतसर में रहता था। काफ़िरों ने सब-कुछ लूटकर इसके बीवी-बच्चों को आग में फूंक दिया।" 'जिन्दा' राहगीर के मुंह से अचानक निकल गया।

दूकानदार हंसा—'जनाब किस दुनिया में रहते हैं ! वह दिन बीत गए जब आग काफिरों के मुरदों को जलाती थी। अब तो वह जिन्दों को जलाती है।'

राहगीर ने तब कड़वी भाषा में काफिरों को वह सुनाई कि दूकानदार ने खुश होकर उसे बैठ जाने के लिए कहा। उसे जाने की जल्दी थी, फिर भी जरा सा बैठकर उसने कहा—'कोई बड़ा आदमी जान पड़ता है।'

'जी हां, वकील था, हाईकोर्ट का बड़ा वकील। लाखों रुपयों की जायदाद छोड़ आया है।'

'अच्छा जी !'

'जनाब ! क्या पूछते हैं ? आदमी आसानी से पागल नहीं होता। दिल पर चोट लगती है तभी वह टूटता है। पर जब वह एक बार टूट जाता है तो फिर हीं न जुड़ता। आज कल चारों तरफ यही कहानी हैं। मेरा घर का मकान नहीं था, लेकिन दूकान में सामान इतना था कि तीन मकान बन सकते थे।'

'जी हां' राहगीर ने सदय होकर कहा— 'आप ठीक कहते हैं पर आपके बाल बच्चे तो ठीक आ गए हैं ?'

"जी हां ! खुदा का फ़जल है। मैंने उन्हें पहले ही भेज दिया था। जो पीछे रह गए थे उनकी न पूछिए। रोना आता है। खुदा गारत करे हिन्दुस्तान को....।"

और वह चला गया, परन्तु उस अर्द्ध-विक्षिप्त के क्रम में कोई अन्तर नही पड़ा। वह उसी तरह धीरे धीरे बाजारों में से गुजरता, शरणार्थियों की भीड़ में धक्के खाता, परन्तु उस ओर देखता नही। उसकी दृष्टि तो आसपास की दूकानों और मकानों पर जा अटकती थी। अटकती ही नही, चिपक जाती। मिक़नातीस लोहे को खींच लेती है वैसे ही वे बेनवां इमारतें, जो जगह-जगह पर

और वह पायदान को देखने के लिए आतुर हो उठा। वह सब कुछ भूलकर सदा की तरह झूमता हुआ आगे बढ़ा, पर तभी जैसे किसी ने उसे कचोट लिया उसने देखा कि लान की हरी घास मिट्टी में समा गई है। रास्ते बन्द हैं, केवल डरावनी आँखों वाले सैनिक मशीनगन संभाले, हैल्मैट पहने तैयार खड़े हैं कि कोई आगे बढ़े और वे शूट कर दें। उसने हरी वर्दी वाले होमगार्डों को भी देखा और देखा कि राइफल थामे पठान लोग जब मन में उठता है फायर कर देते है। वे मानों छड़ी के स्थान पर राइफल का प्रयोग करते हैं और उनके लिए जीवन की पवित्रता बन्दूक की गोली की सफलता पर निर्भर करती है। उसे स्वयं जीवन की पवित्रता से अधिक मोह नहीं था। वह खंडहरों के लिए आंसू भी नहीं बहाता था। उसने अग्नि की प्रज्वलित लपटों को अपनी आंखों से उठते देखा था। उसे अब खाण्डव-वन की याद आ गई थी, जिसकी नींव पर इन्द्रप्रस्थ सरीखे वैभवशाली और कलामय नगर का निर्माण हुआ था। तो क्या इस महानाश की नींव पर भी किसी गौरव-गरिमामय कलाकृति का निर्माण होगा? इन्द्रप्रस्थ की उस कला के कारण महाभारत सम्भव हुआ, जिसने इस अभागे देश के मदोन्मत्त किंतु जर्जरित शौर्य को सदा के लिए समाप्त कर दिया। क्या आज फिर वही कहानी दोहराई जाने वाली है?

एक दिन उसने अपने बड़े बेटे से कहा था—'जिन्दगी न जाने क्या-क्या खेल खेलती है। वह तो बहुरूपिया है, पर दूसरी दुनिया बनाते हमें देर नहीं लगती। परमात्मा ने मिट्टी इसलिए बनाई है कि हम उसमें से सोना पैदा करें'

बेटा बाप का सच्चा उत्तराधिकारी था। उसने परिवार को एक छोटे-से कस्बे में छोड़ा और आप आगे बढ़ गया। वह अपनी उजड़ी हुई दुनिया को फिर बसा लेना चाहता था, पर तभी अचानक छोटे भाई का तार मिला। लिखा था—'पिताजी न जाने कहां चले गए।'

तार पढ़कर बड़ा भाई अचरज से कांप उठा। वह घर लौटा और पिता की खोज करने लगा। उसने मित्रों को लिखा, रेडियों पर समाचार भेजे, अखबारों में विज्ञापन निकलवाए। सब-कुछ किया, पर वह यह नहीं समझ सका कि आखिर वे कहां गये और क्यों गये। वह इसी उधेड़-बुन में था कि एक दिन सवेरे-सवेरे देखा—वे चले वे चले, आ रहे हैं शान्त, निर्द्वन्द्व और निर्मुक्त।

हुआ और उसका चिन्तन गति की चट्टान पर टकराकर पाश-पाश हो गया। उसे जब होश आया तो वह अनारकली से लेकर माल तक का समूचा बाजार लांघ चुका था। वह बहुत दूर निकल गया था। यहां आकर वह कांपा। एक टीस ने उसे कुरेद डाला, जैसे बढ़ई ने पेच में पेचकस डालकर पूरी शक्ति के साथ उसे घुमाना शुरू कर दिया हो। हाईकोर्ट की शानदार इमारत उसके सामने थी। वह दृष्टि गढ़ाकर उसके कंगूरों को देखने लगा। उसने बरामदे की कल्पना की। उसे याद आया – वह कहाँ बैठता था, वह कौन से कपड़े पहनता था कि उसका हाथ सिर पर गया जैसे उसने सांप को छुआ। उसने उसी क्षण हाथ खींच लिया, पर मोहक स्वप्नों ने उसकी रंगीन दुनिया की रंगीनी को उसी तरह बनाये रखा। वह अब इस दुनिया में इतना डूब चुका था कि बाहर की जो वास्तविक दुनिया है वह उसके लिए मृगतृष्णा बन गई थी। उसने अपने पैरों के नीचे की धरती को ध्यान से देखा, देखता रहा। सिनेमा की तस्वीरों की तरह अतीत की एक दुनिया, एक शानदार दुनिया उसके अन्तस्तल पर उतर आई। वह इसी धरती पर चला करता था। उसके आगे पीछे उसे नमस्कार करते, सलाम झुकाते, बहुत से आदमी आते और जाते थे। दूसरे वकील हाथ मिलाकर शिष्टाचार प्रदर्शित करते और........

विचारों के हनुमान ने समुद्र पार करने के लिए छलांग लगाई – उसका ध्यान जज के कमरे में जा पहुँचा। जब वह अपने केस में बहस शुरू करता तो कमरे में सन्नाटा छा जाता था। केवल उसकी वाणी की प्रतिध्वनि गूंजा करती थी। केवल 'मी-लार्ड' शब्द बार-बार उठता और 'मी लार्ड' कलम रखकर उसकी सुनते........

हनुमान फिर कूदे और वह अब बार एसोसियेशन के कमरे में आ गया था। इसमें न जाने कितने कहकहे उसने लगाये थे, कितनी बार राजनीति पर उत्तेजित कर देने वाली बहसें की थीं, वहीं बैठकर उसने महापुरुषों को अनेक बार श्रद्धांजलियां भेंट की थी और विदा और स्वागत के खेल खेले गये थे।

वह अब उस कुर्सी के बारे में सोचने लगा जिस पर वह बैठा करता था। तब उसे कमरे की दीवारों के साथ-साथ दरवाजे के पायदान की याद भी आ गई

करुण स्वर में पत्नी ने कहा—'नहीं, नहीं, आपको अपने मन को संभालना चाहिए। जो कुछ चला गया उसका दुःख तो जिन्दगी भर सालता रहेगा। भाग्य में यही लिखा था, पर अब जान-बूझकर आग में कूदने से क्या लाभ ?'

'हां, अब तो जो-कुछ बचा है उसी को सहेजकर गाड़ी खींचनी ठीक है' उसने पत्नी से कहा और फिर जी-जान से नये कार्य-क्षेत्र में जुट गया। उसने फिर वकालत का चोगा पहन लिया। उसका नाम फिर बार एसोसिएशन में गूंजने लगा। उसने अपनी जिन्दगी को भूलने का पूरा-पूरा प्रयत्न किया और शीघ्र ही वह अपने काम में इतना डूब गया कि देखने वाले दांतों तले उंगली दबाकर कहने लगे—'इन लोगों में कितना जीवट है ? सहस्त्रों वर्षों में अनेक पीढ़ियों ने अपने को खपाकर जिस दुनिया का निर्माण किया था वह क्षण-भर में राख का ढेर हो गई, तो बिना आंसू बहाए उसी तरह की दुनिया, ये लोग क्षणों में ही बना देना चाहते हैं।

उनका अचरज ठीक था। तम्बुओं और कैम्पों के आसपास, सड़कों के किनारे, राह से दूर भूत-प्रेतों के चिर-परिचित अड्डों में, उजड़े, गाँवों में, खोले और खादर में, जहाँ भी मनुष्य की शक्ति कुण्ठित हो चुकी थी, वहाँ ये लोग पहुंच जाते थे और पादरी के नास्तिक मित्र की तरह नरक को स्वर्ग में बदल देते थे। इन लोगों ने जैसे कसम खाई थी कि धरती असीम है, शक्ति असीम है, फिर निराशा कहाँ रह सकती है !

ठीक उसी समय जब उसका बड़ा पुत्र अपनी दूकान का मुहूर्त करने वाला था, उसे एक बार फिर छोटे भाई का तार मिला—'पिताजी पांच दिन से लापता हैं।' पढ़कर वह क्रुद्ध हो उठा और तार के टुकड़े-टुकड़े करके उसने दूर फेंक दिए, और चिनचिनाया—'वे नहीं मानते तो उन्हें अपने किए का फल भोगना चाहिए। अवश्य लाहौर गये हैं।' उसका अनुमान सच था। जिस समय वे इस प्रकार चिन्तित हो रहे थे उसी समय लाहौर के एक दूकानदार ने अर्द्ध-विक्षिप्त व्यक्ति को, जो तहमद लगाए, फैज कैप ओढ़े, फटी-फटी आंखों से चारों ओर देखता हुआ घूम रहा था, पुकारा—'शेखसाहब, सुनिए तो। बहुत दिन में दिखाई दिए, कहां चले गए थे?'

'आप कहाँ चले गए थे ?' प्रथम भावोद्रेक समाप्त होने पर पुत्र ने पूछा।

शांत मन से पिता ने उत्तर दिया–'लाहौर।'

'लाहौर !' पुत्र हठात् कांप उठा–'आप लाहौर गये थे ?'

'हां।'

'कैसे ?'

पिता बोले–'रेल में बैठकर गया था, रेल में बैठकर आया हूं।'

'पर आप वहां क्यों गये थे ?'

'क्यो गया था,' जैसे उसकी नीद टूटी। उसने अपने-आपको संभालते हुए कहा–वैसे ही, देखने के लिए चला गया था।

और आगे की बहस से बचने के लिए वह उठकर चला गया। उसके बाद उसने इस बारे में किसी भी प्रश्न का जवाब देने से इन्कार कर दिया। उसके पुत्रो ने पिता के इस परिवर्तन को देखा, पर न तो वे उन्हें समझा सकते थे, न उन पर क्रोध कर सकते थे, क्योंकि वे दुनिया के दूसरे काम सदा की भांति करते रहते थे। हाँ, पंजाब की बात चलती तो आह भर कर कह देते थे 'गया पंजाब ! पंजाब अब कहां है ?' पुत्र फिर काम पर लौट गए और वे भी घर की व्यवस्था करने लगे। इसी बीच वे एक दिन फिर लाहौर चले गए, परन्तु इससे पहले कि उनके पुत्र इस बात को जान सकें वे लौट भी आए। पत्नी ने पूछा–'आखिर क्या बात ?'

'कुछ नही।'

'कुछ नही क्यों ? आखिर आप वहाँ क्यों. जाते हैं ?'

तब कई क्षण चुप रहने के बाद उन्होने धीरे-से कहा–'क्यों जाता हूं, क्योंकि वह मेरा वतन है मैं वहाँ पैदा हुआ हूं। वहाँ की मिट्टी में मेरी जिन्दगी का राज छिपा है। वहाँ की हवा में मेरे जीवन की कहानी लिखी हुई है।'

पत्नी की आंखें भर आईं, बोली–'पर अब क्या, अब तो सब-कुछ गया।'

'हां, सब कुछ गया।' उन्होंने कहा–' मैं जानता हूं, अब कुछ नही होता है, उसकी याद आते ही मैं आपको भूल जाता हूं और मेरा वतन मिकनातीस की तरह मुझे अपनी ओर खींच लेता है।' उसकी आखें भर आईं।

'तुम नीवट के आदमी हो।'

और तब दूकानदार ने खुश होकर उसे रोटी और कबाब मंगाकर दिया। लापरवाही से उन्हें पल्ले में बांधकर और एक टुकडे को चबाता हुआ वह आगे बढ़ गया।

दूकानदार ने कहा – 'अजीब आदमी है। किसी दिन लखपति था, आज फाकामस्त।'

'खुदा अपने बन्दों का खूब इम्तहान लेता है।'

'जन्नत ऐसों को ही मिलती है।'

'जी हां, हिम्मत भी खूब हैं। जान-बूझकर आग में जा कूदा।'

'वतन की याद ऐसी ही होती है,' उसके साथी ने जो दिल्ली का रहने वाला था, कहा – 'अब भी जब मुझे दिल्ली की याद आती है तो दिल भर आता है।'

और वह आगे बढ़ रहा था, माल पर भीड़ बढ़ रही थी। कारें भी कम नहीं थी और अंग्रेज़ी, एंग्लो-इन्डियन तथा ईसाई नारियाँ पूर्ववत् बाज़ार कर रही थी। फिर भी उसे लगा कि वह माल, जो उसने देखी थी, यह नहीं है। शरीर कुछ वैसा ही है, पर उसकी आत्मा झुलस रही है। लेकिन यह भी उसकी दृष्टि का दोष था। कम-से-कम वे जो वहाँ घूम रहे थे, उनका ध्यान आत्मा की ओर नहीं था।

एकाएक वह पीछे मुड़ा। उसे रास्ता पूछने की जरूरत नहीं थी। बैल की तरह उसके पैर डगर को पहचानते थे। आँखें इधर-उधर देख रही थीं। पैर अपने रास्ते पर बिना डगमगाए बढ़ रहे थे और विश्वविद्यालय की आलीशान इमारत एक बार फिर सामने आ रही थीं। उसने नुमायश की ओर एक दृष्टि डाली, फिर वुलनर के बुत की तरफ से होकर वह अन्दर चला गया। उसे किसी ने नहीं रोका और वह लॉ कालेज के सामने निकल आया। उस समय उसका दिल एक गहरी हूक से टीसने लगा था। कभी वह इस कालेज में पढ़ा करता था……वह कांपा, उसे याद आया, उसने इस कालेज में पढ़ाया भी है…… वह फिर कांपा। हूक फिर उठी! उसकी आंखे भर आईं। उसने मुंह फिरा

उस अर्द्ध-विक्षिप्त पुरुष ने थकी हुई आवाज़ में जवाब दिया—'मैं अमृत-सर चला गया था।'

'क्या!' दूकानदार ने आँखें फाड़कर कहा—अमृतसर!'

'हाँ, अमृतसर गया था। अमृतसर मेरा वतन है।'

दूकानदार की आँखें क्रोध से चमक उठी, बोला—'मैं जानता हूं। अमृत-सर में साढ़े तीन लाख मुसलमान थे, पर आज एक भी नहीं है।'

'हाँ, उसने कहा—'वहाँ आज एक भी मुसलमान नहीं है।'

'काफ़िरों ने सबको भगा दिया, पर हमने भी कसर नहीं छोड़ी। आज लाहौर में एक भी हिन्दू या सिख नहीं है और कभी होगा भी नहीं।'

वह हंसा, उसकी आँखें चमकने लगी। उनमें एक ऐसा रंग भर उठा जो बे-रंग था और वह हंसता चला गया, हंसता चला गया—'वतन, धरती मोहब्बत, सब कितनी छोटी-छोटी बातें हैं—सबसे बड़ा मज़हब है, दीन है, खुदा का दीन। जिस धरती पर खुदा का बन्दा रहता है, जिस धरती पर खुदा का नाम लिया जाता है, वह मेरा वतन है, वही मेरी धरती है और वही मेरी मोहब्बत है।'

दूकानदार ने धीरे से अपने दूसरे साथी से कहा—'आदमी जब होश खो देता है, तो कितनी सच्ची बात कहता है।'

साथी ने जवाब दिया—'जनाब, तब उसकी ज़बान से खुदा बोलता है।'

'बेशक,' उसने कहा और मुड़कर उस अर्द्ध-विक्षिप्त से बोला—'शेख साहब, आपको घर मिला?'

'सब मेरे ही घर हैं।'

दूकानदार मुस्कराया—'लेकिन शेख साहब, ज़रा देखिए तो, अमृतसर में किसी ने आपको पहचाना नहीं?'

वह ठहाका मारकर हंसा—'तीन महीने जेल में रहकर लौटा हूं।'

'सच!'

'हां, हां,' उसने आँखें मटकाकर कहा।

भीड़ बढ़ती आ रही थी। फौज, पुलिस और होमगार्ड, सबने उसे घेर लिया। हसन, जो उसका साथी था, जिसके साथ वह पढ़ा था, जिसके साथ उसने साथी और प्रतिद्वन्द्वी बनकर अनेक मुकदमे लड़े थे, वह अब उन्हें अचरज से देख रहा था। उसने एक बार झुककर कहा—'तुम यहाँ इस तरह क्यों आये, मिस्टर पुरी?'

मिस्टर पुरी ने एक बार फिर आंखें खोलीं। वे धीमे स्वर में फुसफुसाये—'मैं यहाँ क्यों आया? मैं यहाँ से जा ही कहाँ सकता हूं? यह मेरा वतन है, हसन! मेरा वतन…!'

लिया। उसके सामने वह रास्ता था जो उसे दयानन्द कालेज ले जा सकता था। एक दिन पंजाब-विश्वविद्यालय, दयानन्द विश्वविद्यालय कहलाता था……।

तब एक भीड़ उसके पास से निकल गई। वे प्रायः सभी शरणार्थी थे— बे-घर और बे-जर; लेकिन उन्हें देखकर उसका दिल पिघला नहीं, कड़वा हो उठा। उसने चिल्लाकर उन्हें देखकर गालियाँ देनी चाहीं। तभी पास से जाने वाले दो व्यक्ति, उसे देखकर ठिठक गए। एक ने रुककर उसे ध्यान से देखा, दृष्टि मिली, वह सिहर उठा। सरदी गहरी हो रही थी और कपड़े कम थे। वह तेजी से आगे बढ़ा वह जल्दी-से-जल्दी कालेज कैम्प में पहुँच जाना चाहता था। उन दोनो व्यक्तियों में से एक ने, जिसने उसे पहचाना था, दूसरे से कहा – 'मैं इसको जानता हूं।'

'कौन है ?'

'हिन्दू,'

साथी अचकचाया 'हिन्दू !'

'हाँ, हिन्दू ! लाहौर का एक मशहूर वकील…………' और कहते-कहते उसने ओवरकोट की जेब में से पिस्तौल निकाल लिया। वह आगे बढ़ा, उसने कहा–'जरूर यह मुखबरी करने आया है।'

उसके बाद गोली चली। एक हलचल, एक खटपट-सी मची। देखा एक व्यक्ति चलता-चलता लड़खड़ाया और गिर पड़ा। पुलिस ने उसे देखकर भी अनदेखा कर दिया, परन्तु जो अनेक व्यक्ति उस पर झुक गए थे उनमें से एक ने उसे पहचाना और कांपकर पुकारा–'मिस्टर पुरी ! तुम ! तुम यहाँ, ऐसे……!'

मिस्टर पुरी ने आंखें खोलीं, उनका मुख श्वेत हो गया था और उस पर मौत की छाया पड़ रही थी। उन्होंने पुकारने वाले को देखा और धीरे से कहा– 'हसन……हसन……!'

आँख फिर मिच गई। हसन ने चिल्लाकर सैनिक से कहा–'जल्दी करो, टैक्सी लाओ। मेयो अस्पताल चलना है। अभी……'

भी जा उपस्थित हुई और स्वयं भी कदाचित् अपनी सहचरी दीनता की सहायता हेतु प्रहार कर बैठी। जिस दृश्य को देखने से ब्राह्मणी के हृदय के टुकड़े-से होने लगते है, पीड़ा हृदय को नोचने लगती है, उसी दृश्य को देखने के लिए वह विवश हो गई। शीत, ताप, लज्जा, दीनता सबको बात भूलकर वह चिन्ता में डूब गई आकाश ने सहसा उसमें तड़ित्-गति उत्पन्न कर दी। वह एकबारगी उठ कर खड़ी हो गई। भय से हृदय जोर-जोर से धड़कने लगा। कांपते शरीर, भयभीत मन और आकुल नेत्रों से वह झोंपड़ी के सरकण्डे किंचित हटाकर सरयू की जल धारा की ओर जाते हुए अपने बच्चों को आंखें विस्फारित करके ताकने लगी।

दोनों बालिकाएँ, जिनकी वयस अभी सात और नौ वर्ष की ही है; काई से ढंके घड़े हाथ और कमर के सहारे बलपूर्वक दबाए शीत से कांपती चली जा रही है। उनके शरीर के ऊपरी भाग मे कपड़े का एक बालिश्त भर कर टुकड़ा भी नही है। कमर मे अवश्य पुरानी मैली फरिया-सी बंधी है। उसमें भी बीसियों खोपें लटक रही है, जिनकी मरम्मत होना भी असम्भव है। उनके पीछे-पीछे चल रहे है दोनों छोटे-छोटे बालक, जिनके समस्त शरीर पर वस्त्र के नाम को एक चीथड़ा भी नही है, कटि पर मैले काले धागों की करधनी-मात्र बंधी है। वे दोनों राह में पड़ी वृक्ष को पतली पतली सूखी टहनियां उठा-उठा कर अपने नन्हें-नन्हें हाथों मे एकत्रित कर रहे हैं। झोंपड़ी में वापस आकर वे माता के सम्मुख मानों बहुत बड़ी निधि रख कर कहेंगे—'ले मां आग जलादे! हम तपेंगे!' इसी विचार से बेचारे अबोध बालक सन्तुष्ट मन से लकड़ियां बीनने में दत्तचित हैं। उन लोगों के कोमल पैर हिम-सदृश ठण्डी और भीगे रेणु-कणों पर चलने के कारण फूलकर नीले पड़ गए हैं। उस पर मलय समीर के झकोरे उनके नंगे शरीर पर डंक से मार उठते है। शीतलता से ओत-प्रोत वायु का वह प्रबल प्रकोप सहन करने के लिए असहाय बालक कन्धे सिकोड़ कर, ठिठुर कर, किंचित् ठहर जाते है, और फिर चलने लगते हैं। मानों ब्राह्मणी के वे निरीह बालक बड़े पराक्रमी हैं, शूर-वीर हैं, विजेता हैं, जिनसे युद्ध करने के लिए प्रकृति देवी विकट अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित होकर उपस्थित है। दूसरी ओर सील की दुर्गन्ध से भरी फूस की झोंपड़ी के भीतर अपनी अनेक शक्तियों को भेजकर बच्चों की दुखिया माता को परास्त करने को आतुर है। इन शक्तियों में मानों संघर्ष प्रारम्भ है। दीनता के जिस

# श्रीमती कमला चौधरी

(जन्म सन् १९११ ई०)

हिन्दी के कथा–साहित्य की वर्तमान पीढ़ी की लेखिकाओं में श्रीमती कमला चौधरी का महत्वपूर्ण स्थान है। अपने जीवन में, घर और बाहर किये गये अपार अनुभवों का श्रीमती चौधरी की कृतियों में अच्छा दर्शन मिलता है। स्त्री-सुलभ सुकुमारता, माधुर्य्य और भावुकता आपकी अपनी विशेषता है। भाषा सरस और प्रभावशाली है।

'टेक की रक्षा' नामक कहानी में लेखिका ने 'जो पत राखे धर्म की तेहि राखे करतार' अर्थात् जो अपने धर्म और कर्त्तव्य पर दृढ़ रहता है भगवान उसके टेक की रक्षा करते हैं की अच्छी व्याख्या की है। ब्राह्मण त्रिजट और उसके बच्चे भूख से घुले जाते हैं। मातृ-हृदय वेदना से अत्यंत मर्माहत होने पर भी चातक अपने बच्चों को वृतभंग करने की अनुमति नहीं देता और अन्त में भगवान् उसके टेक की रक्षा करते हैं। कहानी लेखिका ने इन्हीं विचारों का प्रतिपादन इस रचना में किया है।

—सम्पादक

कर झोंपड़ी की ओर लौट रहे हैं। हास्य की हल्की रेखा अधरों पर प्रस्फुटित हुई, किन्तु तुरन्त ही विलीन हो गई। हृदय में सन्तोष का हल्का झोंका आया। किंतु झोंका-मात्र था शीघ्र ही अपना प्रभाव लेकर उड़ गया। बालक जल में गिरने से बच गये है और झोंपड़ी की ओर सुरक्षित लौट आ रहे है; यह विचार उस वातावरण में ब्राह्मणी के लिए सन्तोष का साधन था, किन्तु चिन्ता ने फिर हल्का सा प्रहार किया। आशंका से ब्राह्मणी का हृदय बैठने-सा लगा—'कहीं मट्टी के घड़े बालिकाओं के हाथ से गिर कर फूट न जायं।'

उसकी उस दयनीय अवस्था में तो वे घड़े स्वर्ण-कलश से भी अधिक मूल्यवान् हैं उसके लिए उन घड़ों को फिर प्राप्त कर लेना फिलहाल दुर्लभ नहीं असंभव है। कितने दिन हुए जब वह अपनी एक परिचित कुम्हारी को झरबेरी के खट्टे बेर देकर बदले में दो घड़े मांग लाई थी अब तो वस्त्र के अभाव में लज्जावश वहाँ तक जाना भी सम्भव नहीं है। इस चिन्ता ने ब्राह्मणी को उद्विग्न कर दिया। इस समय उसकी दृष्टि में बालिकाओं के परिश्रम के कष्ट से भी अधिक घड़ो की रक्षा महत्वपूर्ण बन गई थी। यदि इस समय कोई भी बालिका घड़ा लिए गिर पड़े और घड़ा फूट जाय, तो माता को बालिका के गिरने से अधिक दुःख घड़ा फूटने का होगा। जिस बालिका के जलमग्न हो जाने की चिन्ता में क्षण भर पहले वह पीड़ा से तिलमिला कर विचलित हो उठी थी, उसी को इस समय वह घड़ा फोड़ डालने के दण्ड स्वरूप क्रुद्ध होकर एक थप्पड़ अवश्य मार बैठेगी।

जब बालक-बालिकाएँ निर्विघ्न यात्रा समाप्त करके झोंपड़ी के द्वार पर आ गये, तो लपककर ब्राह्मणी ने घड़े उनके हाथ से लेकर यथास्थान ठीक तरह रख दिये, और एक दीर्घ निःश्वास लिया। किन्तु यह निःश्वास भी पूर्णतः सन्तोष का निःश्वास नहीं था। सुरक्षित जल से भरे घड़े पाकर भी विषाद उसके नेत्रों से दो अश्रु-कण टपक गया, जिसे बच्चों से छिपा कर फटी धोती के अंचल से पोंछकर ब्राह्मणी ने उनका चिन्ह मिटा दिया।

चिन्ता का अन्तिम प्रहार, और तज्जनित विषाद ब्राह्मणी के लिए बहुत ही तीखा हो उठा। फिर अनेक चिन्ताओं ने उसे घेर लिया।

बालकों को पिता के आने पर भोजन देने का ढाढस बंधाती हुई, ब्राह्मणी आज अपनी दशा पर बहुत दुःखी होती हुई, मन-ही-मन घुटती-सी जीविका-

# टेक की रक्षा

दिन-प्रति-दिन बढ़ते हुए जीवन के हाहाकार से ब्राह्मणी की सहनशक्ति परास्त हो गई। शीत की तीव्र प्रचण्डता और क्षुधा की लहकती ज्वाला से अपने बालकों को भस्मीभूत होते देख माता का हृदय विदीर्ण होने लगा। अपनी जीर्ण-शीर्ण फूस की झोंपड़ी में उसे शीघ्र ही प्रलय का दृश्य उपस्थित होने का आभास मिलने लगा।

दुधमुंहे बालक के लिए पेय पदार्थ का सर्वथा अभाव है। अपने सूखे स्तन पिला-पिला कर भले ही बालक के रुदन को भुलावा दे ले, पर उसके प्राणों को कब तक भुलावे में रख सकेगी।

अन्य चारों बालक-बालिकाओं को भी कब से अन्न के दर्शन नहीं हुए। शरीर पर शीत से रक्षा के लिए तो क्या, लाज ढंकने का भी साधन नहीं है। स्वयं उसके शरीर पर लज्जा की रक्षा करने योग्य साबित धोती नहीं है। कितने ही दिनों से एक फटी धोती, मैली झीनी धोती में वह सिकुड़ी-सिकुड़ाई झोंपड़ी के भीतर ही अपने को छिपाकर लाज बचा रही है।

सरयू की स्वच्छ, सलिल-धारा समीप ही बह रही है, किन्तु लज्जा के कारण वह जल भरकर नहीं ला पाती। उसके अबोध बालक बालिकाएँ मिट्टी के पुराने मैले घड़े लेकर शीत-पाले से ठिठरते जल भरने जाते हैं। वह दृश्य किसी प्रकार ब्राह्मणी से देखा नहीं जाता है। वह बालकों को जल भर लाने को भेज देती है, और फिर हृदय की वेदना से तड़पती हुई पृथ्वी में आंखें गड़ाये बैठी रह जाती है।

रात्रि ने पृथ्वी को हिम-कण उपहार दिए हैं और हेमन्त ऋतु के प्रातः को अपना पूर्ण रूप दिखाने का अवसर मिला है।

आज मातृ-वात्सल्य-सम्पन्न ब्राह्मणी को ममता की आंखें नीची कर लेने मात्र से छुटकारा नहीं मिल सका। दीनता देवी का नग्न नृत्य देखने चिन्ता देवी

अयोध्या में धन-धान्य का अभाव नहीं है। उसके जीवन में ऐसी वस्तुएं इतने बड़े परिमाण में देखने का यह पहला ही अवसर था। यह दृश्य उसके लिए सर्वथा नवीन था।

कौतूहल-निवारण की चेष्टा से ब्राह्मणी ने अपनी बड़ी कन्या मनस्विनी से कहा–'पुत्री बाहर जाकर किसी दर्शक से शीघ्र पूछकर आओ कि राजगृह की यह सम्पत्ति इस प्रकार सरयू के तीर पर क्यों लाई जा रही है।'

मनस्विनी तुरन्त ही अपने बहिन-भाइयों के साथ बाहर भाग गई। और लौट कर जो संवाद सुन आई थी, वह अपने शब्दों में माता को सुनाने लगी– 'मां, महाराजा दशरथ ने अपने ज्येष्ठ पुत्र रामचन्द्रजी को चौदह वर्ष का वनवास दिया है। रामचन्द्रजी अपने भाई लक्ष्मण और अपनी स्त्री सीता के साथ आज वन-यात्रा करेंगे। राम, लक्ष्मण और सीता अपनी सब सम्पत्ति ऋषियों, ब्राह्मणों और दीन दुखियों को दान कर रहे हैं। यह भारी भीड़ दानार्थियों की एकत्रित है।'

ब्राह्मणी के हृदय में लालसा का उद्वेग हिलोरें मारने लगा, अभावपूर्ति के लिए व्यग्र हो उठी। उसने आतुरता से कहा–'बच्चों, सब लोग जाओ और शीघ्र अपने पिता को ढूंढ कर बुला लाओ। वह भी आकर राजकुमार रामचन्द्र से दान में ये वस्तुएं प्राप्त करें तो हमारे दुःख दूर हो जायं।'

बच्चों के मुख में स्वयं ही दूर से खाद्य सामग्रियों को देख-देखकर पानी भर-भर आ रहा था, आंखें उसी ओर देखने को मचल रही थी। मां के मुख से ऐसी बातें सुनकर वे प्रसन्नता से पिता को ढूंढने चले गये। किन्तु मनस्विनी कुछ चिन्ता में पड़कर चुपचाप खड़ी रह गई। उसे इस प्रकार खड़ी देखकर अधीर होकर, माता ने ताड़ना के शब्द में कहा–'पृथ्वी की ओर क्या निहार रही है दुष्टा! शीघ्र भाग जा! तेरे पिता समीप ही के किसी वन में फल-फूलों का अन्वेषण कर रहे होंगे। उन्हें शीघ्र बुला ला। तू अपने बहन-भाई में सबसे बड़ी है, किन्तु बुद्धि में सबसे हीन जान पड़ती है।'

माता को कुपित होते देखकर डरते हुए पीड़ित वाणी में मनस्विनी ने कहा–'मां, तुम तो हम लोगों को सदैव उपदेश देती हो कि भिक्षावृत्ति बहुत दूषित कर्म है और क्षुधा से प्राण दे देना उत्तम है, किन्तु किसी के सम्मुख हाथ

मर्मान्तक दृश्य को माता आंखें बन्द करके भुलाने की चेष्टा कर रही थी, उसी दृश्य को चिन्ता के प्रहार ने उसे देखने को विवश कर दिया है। चिन्ता के आघात से छटपटाती हुई, वह उस दृश्य की भयंकरता को आंखें फाड़-फाड़ कर देख ही नही रही है, बल्कि आखो की राह उस दृश्य के वीभत्स रस को पी रही है।

चिन्ता ने अपने अंकुश की नोक ब्राह्मणी के मस्तक में चुभो कर कहा— 'बच्चे सरयू की वेगवती धारा से जल भरने जा रहे हैं। शीत के कारण उनकी शारीरिक-शक्ति हिम के समान जम गई है हाथ-पैर निश्चेष्ट हो गए हैं। कही घड़े उनके हाथ से छूट न जायं और घड़ो को संभालने की चेष्टा मे बालिकाएं बह न जायं।'

इस कल्पना से विकल होकर ब्राह्मणी इस समय सब कुछ भूलकर उसी चिन्ता मे निमग्न है। उसके हृदय पर, सम्पूर्ण शरीर पर और आत्मा पर इस समय उसी आशंका का आतंक छा गया है। सम्पूर्ण इन्द्रियां भय के समावेश से झंकृत हो उठी है। मातृ-हृदय वेदना से अत्यन्त मर्माहत हो उठा है। किन्तु लज्जा देवी अपनी मर्यादा की रक्षा हेतु उसे पूर्णतः डोलने नही दे रही है। वह केवल घबराई हुई धक्-धक् करता हृदय लिए असहाय खड़ी दम भर रही है। उपाय रहित होने के कारण असहायता, दीनता और करुणा की साक्षात् प्रतिमा सी वह खड़ी हैं।

इस लज्जा पर भी उसे इस समय ग्लानि सी रही हो है। मन कहता है कि इसकी उपेक्षा करके वह बाहर भाग कर अपने बच्चो को लौटाकर स्वयं जल भर लाये। किन्तु साहस नहीं होता। फिर भी आशंका विकल किये जा रही है। विधना न करे, यदि उसकी कल्पना सत्य के रूप मे परिणित हो गई, तो वह क्या करेगी? अवश्य ही लज्जा की उपेक्षा करके झोपड़ी से भाग खड़ी होगी।

ब्राह्मणी ने इस आशंका को भुलाने के उपक्रम मे एक दीर्घ निःश्वास छोड़ कर, आंखें बंद करली, दोनों हाथ जोड़ कर माथे से लगा लिये और प्रार्थना की- "भगवन्! मेरे बच्चों की रक्षा करो?"

आंखे खोलकर ब्राह्मणी ने देखा—बालक-बालिकाएं निर्विघ्न यात्रा समाप्त

धारणा ही को बिलकुल भूल जायं, उनकी वुद्धि पर इस विचार की ओर से पर्दा पड़ जाय।

वह इसी प्रकार की कल्पना कर रही थी कि उसी समय ब्राह्मण त्रिजट ने झोंपड़ी में प्रवेश करके कातर स्वर में कहा—'ब्राह्मणी, आज तो कदाचित बच्चों को भी उपवास करना पड़ेगा! प्रातः से अब तक लगातार परिश्रम करने पर भी आज फल-मूल प्राप्त नहीं हो सके। केवल कैथे के दो कच्चे फल और कुछ लकड़ियां ही पाये हैं। उपवास करते-करते मेरी शारीरिक शक्ति अब हार सी मान रही है। परिश्रम के कारण मुझे कुछ ताप हो आया है। मस्तक में पीड़ा हो रही है और आंखों में पृथ्वी घूमती जान पड़ रही है। रुग्ण होने के कारण परास्त होकर मैं वन से लौट आया हूं। मुझे सरयू का कुछ जल ही पान कराओ। कुछ स्वच्छ होकर फिर वन मे जाकर फल-मूल लाने की चेष्टा करूंगा।'

ब्राह्मणी को इस समय पति के वचन अनावश्यक और व्यर्थ से जान पड़े। रोग की वात असामयिक सी लगी। रुग्णता की वात सुनकर मन में सेवा-भाव उत्पन्न नही हुआ न उसे शीघ्र ही विश्राम कराने का उपक्रम करना ही आवश्यक प्रतीत हुआ, वह चाह रही थी कि किसी प्रकार पतिदेव अपनी वार्ता समाप्त करें, उनकी जिह्वा का क्रम रुके, तो वह अपना आग्रह प्रकट करके दीनता निवारण का उल्लेख करे। उस समय उसका मन, प्राण तथा समस्त इन्द्रियां संकट से छुटकारा पाने को विकल हो उठी थीं। उसका हृदय दीनता के विकराल वाण सहते-सहते क्षत-विक्षत हो रहा था। क्षुधा से व्याकुल अबोध बच्चे की हृदयग्राही दशा के परिणाम की कल्पना से उसके धैर्य का अन्त हो गया था। सहन-शक्ति जैसे सदैव को उसके अन्तर मे विदा हो चुकी थी।

पति के सिर से लकड़ियों का बोझ उतरवाते हुए, उसने व्यग्रता से कहा—'आप किंचित् ढाढ़स रखकर सहन-शक्ति से काम लीजिये। भगवान् ने आज हम लोगों के क्लेश-निवारण करने का विधान रचा है। वह देखिये सरयू के तट पर राज कुमार रामचन्द्र बहुत बड़े परिमाण में सम्पत्ति दान कर रहे हैं। दानार्थियों का विशाल समूह वहाँ एकत्रित है। आप भी जाइये और रामचन्द्रजी से अपना नाम वंश तथा जीविका के अभाव मे परिवार की दुर्दशा का वर्णन करके यथेष्ट सम्पत्ति

उपार्जन के साधन सोचने में निमग्न हो गई। कोई उपाय, कोई युक्ति न सूझ सकने के कारण उत्तेजित-सी होकर उसने निश्चय किया कि पति के आने पर आज वह उससे कोई उपाय निकालकर अन्न-वस्त्र प्राप्त करने को कहेगी। कोई उपाय तो निकालना ही होगा। इस प्रकार जंगली फल-फूलों से कब तक निर्वाह हो सकता है? और वे तो पर्याप्त मात्रा में प्राप्त नहीं होते। आये दिन उपवास करना पड़ता है? इस प्रकार तो निर्वल हो-होकर धीरे-धीरे प्राणांत हो जायगा। भले ही लज्जा और मर्यादा को तिलांजली देना पड़े! माता अपनी आंखों के सन्मुख सन्तति को क्षुधाग्नि से झुलस-झुलस कर मरते कैसे देख सकेगी?

इस समय उसे यदि एक सावित धोती ही प्राप्त हो जाय, तो वह कपास एकत्रित करके किसी से चरखा मांग कर सूत कात ले, और जनेऊ बनाकर पति को वेच आने के लिए दे दे, धर्म की मर्यादा के पालन हेतु, अब तक उसने किसी की चाकरी और सेवा नहीं की है, किन्तु अब बच्चों की प्राण-रक्षा हेतु विवश होकर वह भी स्वीकार करेगी। दूसरों का अन्न कूटेगी, पीसेगी। किन्तु यह सब हो कैसे? इस समय तो घर से वाहर पैर रखने का साधन भी नहीं जुट रहा है।

चिन्तातुर होकर ब्राह्मणी बच्चों की ओर से मुख फेरकर फफक-फफक कर रोने लगी! बच्चे आग तापते हुए पिता के आने की वाट जोह रहे थे!

सहसा ब्राह्मणी के कानों ने भारी कोलाहल का आभास पाया। हृदय में कोतूहल लिये, कारण जानने के लिये, उसने फिर सरकंडों और फूस के बीच के छिद्र से वाहर दृष्टि डाली। देखा — राजप्रसाद के समीप वाले तट पर मनुष्यों की भारी भीड़ एकत्रित है। उन्हीं के कण्ठ-स्वर कोलाहल उत्पन्न कर रहे हैं।

सरयू-तट की सूखी रेणुका पर भांति भांति की सामग्रियां वहुत बड़े परिमाण में एकत्रित की गई है। सभी प्रकार की उपयोगी वस्तुएँ वहाँ लाई जा रही है। अन्न-वस्त्र, धन-धान्य, स्वर्ण-चांदी, हीरे-जवाहरात तथा वहुमूल्य आभूषणों के वहाँ ढेर लगे हैं।

ब्राह्मणी लालायित नेत्रों से दूर तक दृष्टि दौड़ाकर भली भांति इन वस्तुओं का अवलोकन करने की चेष्टा करने लगी। उसके मन ने जैसे आज ही जाना कि

अभाव से अबोध बच्चे घुल रहे हों, तो उस समय भी अपनी टेक लेकर निरुपाय बैठे रहना, श्रेष्ठता नहीं, कायरता है, आलस्य है। अन्न-वस्त्र प्राप्ति का साधन सम्मुख उपस्थित होने पर भी उसकी उपेक्षा करके बच्चों को उपवास कराना कहाँ का न्याय है, स्वामी ?'

'उपयुक्त खाद्य सामग्री न मिलने के कारण इनके शरीर सूख-सूख कर पिंजरमात्र रह गये हैं। नित्य-प्रति अबोध बच्चों को क्षुधा से बिलखते देखकर भी अपनी टेक के कारण चुपचाप बैठे रहना क्या शोभा देता है ? इस समय तो आपके लिए मान सम्मान, धर्म-कर्म, कर्तव्य, सब कुछ त्याग कर क्षुधा से व्याकुल अपने बच्चों को भोजन दिलाना है। देखिये, गोद का बालक निर्बलता के कारण जोर से रोने की भी शक्ति खो चुका है। इसके होंठ सूख रहे हैं। यदि तुरन्त ही इसके लिए दूध का कुछ उपाय न हुआ, तो इसकी प्राण-रक्षा कैसे होगी, स्वामी ? आप पातक के भागी होंगे, और संसार में भी निन्दा के पात्र बनेंगे।'

यह सब कहकर ब्राह्मणी मार्मिक स्वर में विलाप करने लगी। ब्राह्मण त्रिजट का हृदय वेदना से विकल होकर खण्ड-खण्ड सा होने लगा। व्याकुल स्वर में उसने कहा—'चुप रहो ब्राह्मणी ! मैं तुरन्त ही जाता हूं। तुम सत्य कहती हो। इस समय बच्चों की प्राण-रक्षा करना मेरा प्रमुख कर्तव्य है। भगवान् ने शायद मेरा अभिमान चूर्ण करने के लिए ही मुझे ऐसे घोर संकट में डाला है।'

विकल हृदय से एक दीर्घ निश्वास छोड़कर, त्रिजट जाने का उपक्रम करने लगा। किन्तु सहसा अपने शरीर की ओर दृष्टि डालकर रुककर खड़ा हो गया और अपनी असहायता पर बहुत ही विकल होकर कहने लगा—इस अवस्था में रामचन्द्रजी के सम्मुख इतने मनुष्यों के बीच में कैसे जाने का साहस करूं ब्राह्मणी ? अपनी इस दशा पर मुझे अत्यन्त लज्जा उत्पन्न हो रही है। वृक्ष की छाल की लंगोटी मात्र बांधे देखकर मुझे ब्राह्मण कौन समझेगा ? जंगली, कोल, भील आदि समझ कर राजकर्मचारी मेरा अपमान करेंगे और मुझे उनके समीप जाने न देंगे।'

निरुपाय-सा होकर त्रिजट माथा पकड़ कर स्तब्ध खड़ा रह गया। ब्राह्मणी ने तुरन्त ही साहस से काम लिया। मातृ हृदय ने, जो इस समय सन्तति की जीवन-रक्षा के सम्मुख सब-कुछ अर्पण करने को विवश था, एक उपाय खोज

फैलाना उचित नहीं है। पिता को कितनी बार मैंने कहते सुना कि भगवान् ने मनुष्य को परिश्रम करने के लिए यथेष्ट शक्ति दी है। बिना परिश्रम के अन्न ग्रहण करना अखाद्य खाने के बराबर है। फिर तुम आज पिता को अन्न-वस्त्र मांगने के लिए क्यों भेजना चाहती हो, मां ?'

बालिका की बात सुनकर ब्राह्मणी क्षण भर को स्तब्ध रह गई। मन-ही मन वह अपनी भूल अनुभव करने लगी। किन्तु तुरन्त ही बुद्धि ने फिर दीनता के लगातार होने वाले प्रहारों का स्मरण कराया। ब्राह्मणी सावधान हो गई। उसने इस बार दुलार से कहा—'यह बात दूसरी है, पुत्री! भिक्षा में और सम्मानपूर्वक श्रेष्ठजनों के हाथ से धन लेने में बहुत अन्तर है। तेरे पिता का गर्ग-गोत्रीय वंश में जन्म हुआ है। ब्राह्मण सर्वथा दान लेने का अधिकारी है, तू शीघ्र ही पिता को बुला ला।'

वार्तालाप में सफलता प्राप्त करके भी ब्राह्मणी को लगा, जैसे मनस्विनी के साथ ही, बुद्धि की युक्ति द्वारा, वह अपने हृदय को भी छल रही है। अब तक दान ग्रहण करना ही उन लोगों ने अपना सम्मान माना होता, तो क्या प्रजा-पालक राजा दशरथ के समृद्धिशाली राज्य में वे इस दीन अवस्था को प्राप्त होते? कितनी ही बार तो उसने राजगृह में अनुष्ठान और दान-पुण्य होने की बात सुनी है, किन्तु इससे पूर्व कभी भी उसके मन में दान लेने की अभिलाषा उत्पन्न नहीं हुई थी।

फिर भी ब्राह्मणी तत्परता से इस विचार को सर्वथा भूलने की चेष्टा करने लगी। उसने निश्चय कर लिया कि इस विषय में अपनी धारणा को परास्त कर इस समय वैसे विचारो पर उपयोगिता की विजय करना ही उचित है। अपने साथ ही उसे अभी पति की चिरसंचित धारणा के साथ संघर्ष करना पड़ेगा। उसके विचार-परिवर्तन के लिए दृढ़तापूर्वक तटस्थ रहने की आवश्यकता है।

ब्राह्मणी ने, जो स्वयं भी अब तक पति की दान न लेने वाली प्रवृत्ति की समर्थक थी, इस समय पति की उस टेक के विरुद्ध हठ करने का संकल्प कर लिया। वह सोचने लगी कि किसी प्रकार आज उनके बीच ऐसा प्रसंग उठे ही नहीं तो उत्तम हो। पतिदेव उस धारणा के महत्व को ही नहीं, बल्कि उस

चरमसीमा पर पहुंचा दिया। किन्तु इस समय अपमान के शोक ने उसके मन में क्रोध उत्पन्न नही किया, बल्कि ग्लानि से उसका हृदय फटने लगा, आंखें और भी पृथ्वी मे गड़ गईं, और मन मे कहने लगा—'रामचन्द्रजी ही की भांति यहां एकत्रित सम्पूर्ण जन-समुदाय मुझ पर हंस रहा है। कदाचित् यहां उपस्थित सभी मनुष्य और स्वयं रामचन्द्रजी मुझे बावला और अत्यन्त हीन मनोवृत्ति का भिखारी समझ रहे हैं। मानों निर्धनता के दोष मे उत्पन्न हुए सारे ही अवगुणों का मैं समूह हूं। वे मुझे अत्यन्त कायर, आलसी और असत्य भाषी समझ रहे हैं उनकी आंखों मे मैं आडम्बरधारी, लोभी और दुराचारी भिखारी बन गया हूं। इस कारण दान को ग्रहण करने का पात्र न समझकर ही रामचन्द्रजी मुझ पर हंस पड़े हैं, नही तो श्रद्धापूर्वक तुरन्त ही वह मुझे दान देने को उत्सुक हो उठते। मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्रजी तो विप्रों का मान-सम्मान और मर्यादा रखने में विख्यात हैं। तभी यहां उपस्थित तेजस्वी ब्राह्मणगण भी ब्राह्मणत्व का अपमान होते देखकर भी क्रोधित न होकर निःशब्द खड़े हैं।'

इन विचारो से अत्यन्त मर्माहत होकर ब्राह्मण त्रिजट मूर्छित-सा होकर पृथ्वी पर गिरने लगा। उसी समय रामचन्द्रजी ने त्रिजट का हाथ पकड़ कर मुस्कराते हुए सारे जन-समुदाय को आश्चर्य में डालने वाली बात कही—'हे पराक्रमी द्विजवर त्रिजट ! ब्राह्मणत्व के नाते तुम अपना शौर्य छिपा रहे हो किन्तु ब्राह्मण श्रेष्ठ, मेरी इच्छा तुम्हारे बाहुबल का दिग्दर्शन करने की है।

त्रिजट सहसा चौंक उठा। लज्जा के वशीभूत हो, जिज्ञासापूर्ण दृष्टि उसने रामचन्द्रजी के मुख पर डाली। रामचन्द्रजी इस समय भी मुस्करा रहे थे, किन्तु त्रिजट को उस मुस्कान में अपमान और परिहास के भाव दृष्टिगोचर नही हुए, बल्कि उस मुस्कान मे एक रहस्य का आभास प्रतीत हुआ। अतः उसमें किंचित् शक्ति और साहस का संचार होकर लज्जा तथा ग्लानि का वेग शिथिल होने लगा।

समीप खड़े एक व्यक्ति के हाथ से गौ घेरने का डण्डा छीनकर रामचन्द्रजी ने त्रिजट के हाथ मे देकर कहा—'अपनी जिन भुजाओं को तुम बहुत ही निर्बल, शक्तिहीन बता रहे हो, उन्ही मे इस डण्डे को शक्ति भर दूर फेंक कर बाहुबल की परीक्षा तो करो। देखो, यहां से सरयू के उस पार तक गौओं के समूह खड़े

दान में पाइये, तो हम लोगों के कष्ट दूर हों और बच्चों की प्राण-रक्षा करें। फिर इस प्रकार नित्य आपको जंगली फल-मूलों के लिए भटकना नहीं पड़ेगा।'

हाथ का फाल और कुदाली एक ओर फेंककर ब्राह्मण त्रिजट धम से पृथ्वी पर गिर-सा पडा और हांफते हुए उसने जल की ओर संकेत किया। जल पीकर भी जब त्रिजट कुछ सोच में डूबा हुआ निरुत्तर ही बैठा रहा, उसने जाने का उपक्रम नहीं किया, तो ब्राह्मणी उत्तेजित होकर दुःख से अकुला उठी। उसने तीव्र स्वर में कहा—'आप देर क्यों कर रहें हैं। देखिये न, श्रेष्ठ राजकुमारों और मनस्विनी सीता ने दान सामग्रियों का वितरण करना आरम्भ कर दिया है! क्या जब सब वस्तुएं समाप्त हो जायंगी, तब आप जायंगे? अपने शरीर को दृढ़तापूर्वक संभाल कर साहस से काम लीजिये'

सोच में डूबे हुए ब्राह्मण त्रिजट ने आश्चर्य की मुद्रा से कहा—'यह आज तुम्हारा कैसा आग्रह है, ब्राह्मणी? मेरा वहाँ जाना क्या तुम्हें उचित जान पड़ रहा है? अपने परिश्रम के ही बल पर जीवन-निर्वाह करना मेरा नियम रहा है और तुम भी इसी विचार की समर्थक थीं। फिर आज यह कैसी बात कह रही हो?'

ब्राह्मणी प्राणपण से युक्तिपूर्वक त्रिजट के इस विचार को समय के विपरीत ठहराने की चेष्टा करने लगी। बोली—'वहाँ इस समय बड़े-बड़े श्रेष्ठ विद्वान, ब्राह्मण और ऋषि दान ले रहे हैं। फिर आप जैसे दीन व्यक्ति का दान ग्रहण करने में अपमान ही क्या है? इस दान में तो राज-धन है। स्वयं राजकुमार अपने हाथ से दान दे रहे हैं। प्रजा का पालन-पोषण करना राजा का धर्म है। राज-धन ब्राह्मण को ही नहीं सारी प्रजा के लिए ग्राह्य है। दान का लक्ष्य दीन-दुखिओं और ब्राह्मणों को सुखी करना होता है। राजा स्वयं ही जब प्रजा के क्लेश-निवारण के उपाय में संलग्न हो और प्रजा अभिमानवश उसे अपनी दशा का आभास ही न होने दे, तो यह प्रजा की बुद्धिहीनता और राजा के लिए निन्दा की बात है। अतः आप सारा संकोच त्याग कर तुरन्त ही जाइये, और रामचन्द्र से अपनी दीनता का वर्णन कीजिये।

'अपने परिश्रम से जो कुछ प्राप्त हो; उसी पर संतोष करना मनुष्य स्वभाव का उत्तम लक्षण है, किन्तु ऐसी विकट परिस्थिति में जब खान-पान के

सैंकड़ों आदमी एक साथ बोल रहे थे, किसी को कुछ सुनाई ही नहीं देता था।

लेखराज पुनः चिल्ला उठा....उसकी आवाज में दीवारों में छेद करने वाला क्रन्दन था। भीड़ में सभी तरह के लोग थे, पंडित, भंगी और किसान। चम्पो की मृत्यु का बदला वह अवश्य लेंगे। भगवान् बुद्ध भी लेंगे। नहीं, वह स्वयं तो ले रहे थे। पत्थर की मूर्ति जल रही थी, भगवान् गाँव भर से रूठ गये थे। काठ की मूर्ति नहीं, पत्थर की मूर्ति से लपटें निकल रही थीं ऐसा कभी हुआ था?

लेखराज के बच्चे माँ को पुकार रहे थे। पहली बार जीवन में उसने भी अनुभव किया, कि वह दोषी है। चम्पो की मृत्यु में उसका भी हाथ है। चम्पो ऐसे ही मरने वालों में से न थी, यह सब लेखराज के पापों का फल है। सिवाय पुजारी राधेमल'''या शायद भगवान् के, जो अपना रोष प्रकट कर रहे थे, जल रहे थे, कोई नहीं जानता था कि चम्पो की मृत्यु क्यों हुई, कैसे हुई? छोटा पुजारी चिल्ला चिल्ला कर कह रहा था''''''लेखराज शराबी है, चम्पो ने आत्महत्या करली है। लेखराज के अत्याचारों से तंग थी।'

गाँव के एक बूढ़े बाबा ने आगे बढ़कर कहा—"चम्पो ने आत्महत्या कर ली है तो पुजारी को कांपने की क्या आवश्यकता है? भगवान् शाप दे रहे हैं, पुजारी को नहीं चम्पो को, गाँव वालों को।"

लेखराज के दादा-परदादा भले रहे होंगे। परन्तु उसके पिता तरखानों का पेशा करते थे, उन्होंने एक आरा मोल ले रखा था। लेखराज ने भी आरे का काम ही किया। उस इलाके में सिख तरखान ही अधिकतर थे। लेखराज के पिता को मरे भी दस वर्ष होने को आये थे। उसने पिता के समय से ही आरे पर काम करना शुरू कर दिया था। परन्तु फिर भी तरखान पेशा के लोग उसे अच्छा न समझते थे। उनकी आंखों में सदैव लेखराज खटकता था। लेखराज के घर का दूसरे तरखान पानी भी न पीते थे। उनके शादी-ब्याह में उसे न्योता मिलता था, परन्तु सब से दूर कर अलग बैठाया जाता था।

लेखराज और भी गांव वालों की आंख की किरकिरी बन गया, जब वह चम्पो को ब्याह कर लाया। गठा हुआ शरीर, सँवला रंग, दो बड़ी-बड़ी मस्त

लिया। पति को धैर्य बंधाने के लिए मृदु शब्दों में उसने कहा—'ब्राह्मण के लिए माथे पर चन्दन का तिलक और गले में यज्ञोपवीत भर यथेष्ट है। आपके पूजा वाले मृग-चर्म को लपेट कर मैं अपनी धोती आपको दिये देती हूं! इसे लपेट लीजिए! किंचित् धैर्य धारण करके साहसपूर्वक आप रामचन्द्रजी के समीप जायं। वे ब्राह्मणों की प्रतिष्ठा और आदर-सम्मान करने के लिए विख्यात है। वह तुरन्त ही आपके कष्ट का सदैव के लिए निवारण कर देंगे।.

त्रिजट के चले जाने पर ब्राह्मणी ने दोनों हाथ ऊपर उठा कर मन-ही मन कहा—'देव, दीन की लाज रखना न रखना तुम्हारी इच्छा पर निर्भर है। इस समय तो मेरे पति को वहाँ पहुंचने की दृढ़ता ही प्रदान करो! भगवान् दीनता से युद्ध करने का अब हममें साहस नहीं। हमारा अपराध क्षमा करो।'

दीन त्रिजट फटी धोती को बार-बार अपने हाथ से संभालता हुआ, लज्जा से मस्तक झुकाए हुए किसी प्रकार रामचन्द्रजी के सम्मुख उपस्थित हुआ और सकुचाते हुए हाथ जोड़कर अस्फुट वाणी में रामचन्द्रजी से कहने लगा—'हे नर-श्रेष्ठ राजकुमार! मैं समीप ही सरयू के किनारे फूस की एक झोपड़ी मे बसने वाला दीन ब्राह्मण हूं। मेरे स्त्री है, और अनेक पुत्र-पुत्रियां है। जीविका के अभाव के कारण मैं जंगली फल मूलों पर ही अपने परिवार का निर्वाह कर रहा हूं। परिश्रम और उपवास करते-करते मैं अत्यन्त निर्बल हो गया हूं। देखिये, मेरे शरीर का रंग पीला पड़ गया है। मेरे बच्चे अन्न-वस्त्र के अभाव से, क्षुधा और शीत से बहुत ही व्याकुल होकर त्रो रहे है, मैं क्षुधाग्नि से उनकी रक्षा करने में बिलकुल असमर्थ हूं। आप·······।'

दीन त्रिजट अपना कथन भी पूर्ण न कर सका। बीच ही में नरश्रेष्ठ राम-चन्द्र खिलखिला कर जोर से हंस पड़े। रामचन्द्रजी की इस हंसी से वहाँ उपस्थित सारा जन-समुदाय रामचन्द्रजी का मुख देखने लगा और दीन-हीन, असहाय ब्राह्मण त्रिजट अपमान और उपेक्षा अनुभव करके बहुत ही लज्जित और रुआंसा हो गया। उसके मन को लगा कि यदि आज उसे इस प्रकार विवश होकर रामचन्द्रजी से दान मांगने के लिए न आना पड़ता, तो क्यों उसका आत्मसम्मान नष्ट होता, क्यों उसकी दीन दशा उसका वह लज्जा-भाव रामचन्द्रजी की आंखों में हास्य-जनक व्रन उटता! अपमान की लज्जा से उसकी मनोदशा को असहायता की

चम्पा कुछ कहती तो लेखराज डांट देता, मौका पाकर वह उसे पीटने भी लगा था। चम्पा के जीवन में यह जो तूफान आया, इसने उसकी शक्ति को चूर कर दिया। उसके वश में नहीं था कि वह इसका कोई उपाय करती।

चम्पा के नटखट लड़के अब चुप करके दुबक के रसोई के एक कोने में बैठा करते। पिता को देख कर रसोई घर में छिप जाते। मां की गोद में मुंह छिपाने के लिए उसका आंचल घसीटते। चम्पा अपनी कजरारी आंखों से, जिनका तेज बहुत कम हो गया था, आंसू बहाती रहती। ऐसा भी समय था जब लोग उससे ईर्ष्या करते थे, अब वह अपनी सखी सहेलियों से मुंह चुराती।

गाँव के सुनार से दूसरे तीसरे महीने चम्पा कुछ बनवाती रहती थी। अब आठवें दसवें दिन कुछ न कुछ बेचती रहती। नहीं तो घर का खर्च कैसे चलता? अब वह दूसरों के खेतों में मजदूरी भी करने लगी थी। मजदूरी से भी जो पैसे लेती, वह भी लेखराज अब शराब पीने के लिए ले लेता........कभी छीन लेता। यदि चम्पा उसे मना कर देती तो वह उसे मारता।

लेखराज की अवस्था दिन पर दिन बिगड़ती गई। वह शराब में चूर कई कई दिन तक घर नहीं आता था। एक-एक करके चम्पा के सब गहने बिक गए।

चम्पा का सलोना शरीर मुरझाता जा रहा था। मुख की श्री और कांति समाप्त हो चुकी थी। वह बच्चों पर बरसती और अपना सारा क्रोध उन्हीं पर निकालती। बच्चे अब उससे डरने लगे थे।

एक दिन लेखराज ने एक बच्चे की सौगन्ध खाई, वह अब कभी शराब नहीं पियेगा। आरा बिक गया था, तो क्या! वह कुल्हाड़ी से लकड़ी काटेगा। चम्पा को लगा जैसे वर्षा की हल्की सी फुहार पड़ी हो, जैसे बादलों से घिरा आकाश निखर आया हो।

उसने जाले से भरी छत को देखा। न जाने इधर वह आलसी क्यों होती जा रही है, उसने अपने घर के जाले क्यों नहीं उतारे? धुएं से सारी छत काली हो रही थी। चम्पा की निराश आंखों में आंसू आ गये, फटी मैली धोती के छोर से उसने आंखें पोंछ ली। वह भागी-भागी मन्दिर के द्वार तक गई, बाहर से ही उसने भगवान् को प्रणाम किया। आशीर्वाद मांगा, उसके पति को सुबुद्धि मिले।

हैं। मैं वचन देता हूं कि तुम्हारी फेंकी लकड़ी जिस हद तक जाकर गिरेगी, उतनी दूर की समस्त गौओं पर तुम्हारा अधिकार होगा।'

रामचन्द्रजी के इन प्रोत्साहनयुक्त शब्दों से त्रिजट में पराक्रम उत्पन्न हो गया। उसे जान पड़ा कि उसकी बाहुओं में कोई दिव्य शक्ति छिपी है जिसका आभास पाकर अन्तर्यामी रामचन्द्रजी मुस्करा उठे थे और अब उसे उस शक्ति का स्मरण कराके प्रोत्साहन दे रहे है। इस विचार ने उसके गिरते हुए रुग्ण शरीर मे अद्भुत उत्तेजना का संचार किया और एक बलिष्ट योद्धा की भाति त्रिजट ने अपनी उस फटी धोती को समेट कर कटि पर कस लिया और रंग-बिरंगे झूलों और चांदी की हमेलों से सुसज्जित स्वर्णमण्डित सीगो वाली हृष्ट-पुष्ट गौओं पर एक दृष्टि डालकर, परम साहस और विश्वास के साथ बलपूर्वक अपने हाथ के डण्डे को द्रुतगामी गति से फेंका।

देवयोग से त्रिजट की फेंकी लकड़ी सरयू की विशाल जलधार के उस पार गौओं की एक बड़ी गोष्ठी के बीच मे खड़े बैल के समीप जाकर गिरी।

सारी भीड़ हर्ष-ध्वनि कर उठी। रामचन्द्रजी ने त्रिजट को हृदय से लगाकर कहा—'ब्रह्मदेव त्रिजट, तुमने अपने बाहुबल से असंख्य गौओं की बाजी जीत ली है। तुम्हें बधाई है!'

सोलह सहस्त्र गायें पाकर ब्राह्मणी और उनके बच्चों के हर्ष का पारावार नही रहा। और त्रिजट का हृदय अपनी टेक की रक्षा करने वाले, स्वाभिमान की रक्षा करने वाले और दीनता के प्रलयंकारी प्रहार से परिवार का उद्धार करने वाले, महाराज रामचन्द्रजी के प्रति श्रद्धा और भक्ति से परिपूर्ण हो उठा।

वोलने में क्या दोष है। उसने टूटी-सी मिट्टी की हंडिया एक कोने में से निकाली। लेखराज के मन मे क्षण भर के लिये दुविधा भी नही हुई। वह उठा और रुपयों पर झपटा। उसने एक वार बच्चो की ओर देखा, फिर उसी तरह भागा जैसे गाय रस्सा छुड़ाकर भागती है।

उस रात चम्पा देर से घर लौटी। अपनी उस दिन की कमाई में से आटा पिसवा कर लेती आई। रोज रात को सोने से पहले वह हंडिया में एक बार रुपए गिन लिया करती थी। आज उसने ऐसा नही किया। जल्दी-जल्दी बच्चों को खाना देकर खाट पर लेट गई। एक वार उसे ख्याल आया लेखराज घर पर नही। दूसरे ही क्षण यह ख्याल जाता रहा क्योंकि लेखराज तो कभी घर पर होता नही। कल त्यौहार है।

चम्पा की आंखों के सामने अपने व्याह की पहली दिवाली गुजर गई। तब लेखराज ने नया जोड़ा ही नही वनवा कर दिया था, वल्कि नये कंगन भी लेकर दिये थे। चांदी के सोलह तोले के कंगन जिन्हें वेचकर रुपये उसने लेखराज को दे दिये थे।

दूसरे दिन सुवह उठते ही बच्चो ने चम्पा को घेर लिया। "मां मुझे वर्फी चाहिये, मां मुझे लड्डू चाहिये।"

चम्पा के मन मे स्फूर्ति थी, चलो अच्छा हुआ उसने कुछ पैसे तो वचा रखे हैं। आज का दिन तो अच्छा निकल जायेगा। जल्दी से हाथ मुंह धोकर चम्पा ने हांडी टटोली, पैसे नही थे, हांडी का मुंह खुला पड़ा था। चम्पा के पाव के नीचे से धरती खिसक गई, आंखो के सामने अंधेरा छा गया। हृदय मे एक हूक सी उठी और तीर सा लगा। चम्पा धरती पर वैठ गई।

"मां क्या हुआ ?"

चम्पा चुप रही।

"मां वर्फी चाहिये।"

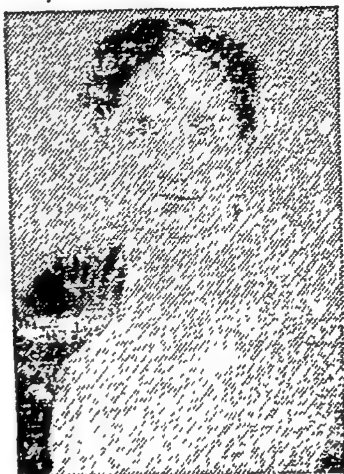
"रुपये किसने चुराये है ?"

वड़े लड़के ने आंख मलते हुए कहा—"वापू ने चुराये है।"

# श्रीमती रजनी पनिकर

( जन्म सन् १९२४ )

प्रतिभाशाली व्यक्तित्व किन्हीं परिस्थितियों में क्यों न रहे अपना विकास करके ही रहता है। श्रीमती रजनी पनिकर का जीवन इस सूत्र का ज्वलंत उदाहरण है। अंग्रेजी और हिन्दी में एम० ए० करने के साथ-साथ उन्होंने पत्रकारिता से अपना जीवन आरम्भ किया। आजकल वे आल इण्डिया रेडियो कलकत्ता में सहायक संचालिका है। श्रीमती पनिकर ने योग्यता-पूर्वक अपने कार्य के साथ-साथ उपन्यास और कहानी-लेखन की गतिविधि को भी सहज भाव से चलाया है। यह उनकी आन्तरिक साहित्यिक लगन का परिचायक।



निरन्तर सरकारी सेवा करते हुए उन्होंने अब तक छः उपन्यास और एक कहानी संग्रह हिन्दी संसार को भेंट किया है। उपन्यासों के नाम हैं :—(१) 'ठोकर' (सन् ४९)। (२) 'पानी की दीवार' (सन् ५४) (३) 'मोम के मोती' (सन् ५४)। (४) 'प्यासे बादल' (सन् ५५)। (५) 'काली लड़की' (सन् ५८)। (६) 'जाड़े की धूप' (सन् ५८)। कहानी संग्रह का नाम 'सिगरेट के टुकड़े' (सन् ५६)। (७) ❀ प्रेम चुनरिया बहुरंगी (सन् ६४)।

—डॉ० पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश'

❀ प्रेम चुनरिया बहुरंगी—लेखिका श्रीमती रजनी पनिकर।
प्रकाशक—कल्याणमल एंड संस, जयपुर मूल्य ७.५० मात्र।

वहने लगी। मन्दिर में आरती हो रही थी। घण्टा बजने का स्वर चम्पा के घर तक भी आ रहा था। वह एकाएक उठी, भगवान् के घर में आरती हो रही है! मनों चढ़ावा चढ़ा होगा। प्रसाद यह भी ले आवे। प्रसाद पाकर ही बच्चों को फुठला सकेगी।

मन्दिर को विशेष रूप से सजाया गया था। दीपों से जगमगा रहा था। गांव के सब समर्थ व्यक्ति चढ़ावा चढ़ाने आये थे। चम्पा भी मन्दिर की सीढ़ियों के पास हाथ जोड़ कर खड़ी हो गई। आरती समाप्त हो गई, चरणामृत बंट गया, प्रसाद बंटने लगा। चम्पा दुबक कर कोने में घण्टा भर खड़ी रही। पुजारी राधेमल ने देखा भीड़ छंट गई है, तो वह भी मन्दिर के भीतर चले आए।

चम्पा साहस करके आगे बढ़ी, "दिवाली मुबारिक पंडित जी, जरा सा प्रसाद मुझ गरीब को भी दे दीजिये।"

पंडित जी की भवें चढ़ गईं। इस भंगिन की इतनी मजाल! जब नवेली थी, सुन्दर थी, पुजारी राधेमल ने इसे कहा था, पांच रुपया महीना और रोटी दूंगा, मन्दिर पर झाड़ू लगा जाया कर। तब ऐंठ दिखलाती थी। दस आदमियों के सामने अंगूठा दिखला कर चली गई थी। आज पंडित जी भी बदला ले सकते हैं। आखिर भंगिन ठहरी!

पुजारी राधेमल ने देखा, चम्पा का चम्पक सा रंग काला पड़ गया था। वह कजरारी आंखें भीतर धंस गई थी। कपड़े फटे हुए थे। बाल रूखे और बिखरे हुए। पंडित राधेमल का मन घृणा से भर उठा। तो यह है चम्पा उस शराबी लेखराज की पत्नी।

'तू कहां आ गई है इस समय शुभ मुहूर्त में? लक्ष्मी पूजा समाप्त हुई। तू प्रसाद मांगने कैसे आई है?"

"बड़ा उपकार होगा महाराज। प्रसाद दे दीजिये। मेरे बच्चे भूखों मर रहे हैं।'

"तो यह कोई अनाथालय नहीं। चल, दूर हट, भगवान् के घर में तेरा घमण्ड चूर-चूर हो रहा है।"

चम्पा ने बड़ी विनती की परन्तु उसका कोई प्रभाव नहीं हुआ। अन्त में

# भगवान् जल गया

पूर्व में सूर्य की लाली से नहीं वरन् उत्तर में मन्दिर के जल जाने से आकाश लाल हो उठा था ! लपटें उड़-उड़ कर, पास के वर्षों पुराने पीपल के पेड़ को छू रही थीं ! मन्दिर के बाहर बहुत सी भीड़ जमा हो रही थीं। लोग तरह-तरह की बातें कर रहे थे। गाँव के इतिहास में यह पहली घटना थी। गाँव वालों ने न कभी सुना था न देखा था। लेखराज को एक दो आदमियों ने पकड़ रखा था। वह रह-रह कर अपने को छुड़ाने का प्रयत्न करता, परन्तु उसका कमजोर क्षीण शरीर उसी तरह विवश होकर रह जाता, जैसे पिंजरे में बन्द जानवर लोहे की जाली से टकराकर, फिर पीछे हो जाता है।

'मुझे छोड़ दो, मैं इस पापी का खून कर दूंगा, मैं इस का गला घोट दूंगा'

भीड़ में एक आवाज उठी—"पुजारी पापी नहीं है, तुम पापी हो, वाहे गुरु, वाहे गुरु, सतनाम।"

'सब इस पुजारी की बदमाशी हैं'—पीपल के नीचे से किसी युवक ने कहा।

एक बुढ़िया लाठी टेकती हुई सब गाँव वालों को शान्त करने लगी।

नहीं कलयुग है, भगवान् की मूर्ति से आग की लपटें निकल रही है। ऐसा कभी किसी ने देखा हैं, ऐसा कभी किसी से सुना है ? आजकल जो हो, वही कम है।"

"सब इस पुजारी की बदमाशी है।"

"नहीं, उस चुडैल चम्पो, ने मन्दिर को भ्रष्ट कर दिया।"

भंगियों की एक टोली किसी कोने से बोली, "नहीं, चम्पो मीरा से कम नहीं थी, उसे भगवान् ने शरण दी।"

"अधिक बात न करो, मीरा को बदनाम न करो। ऐसी बात जबान से निकाली तो जबान खींच लूंगा।"

राधेमल ने धक्का दिया । चम्पा के हाथ से थाली झनझना कर दूर गिर गई । एक दीप भगवान् की मूर्ति पर गिरा । चम्पा धक्का न सह सकी, वह भगवान् के चरणों में गिर पड़ी । भगवान् जाने मानसिक आघात से वह मर गई या अचेत हो गई ।

एकाएक भगवान् की मूर्ति में से आग की ज्वाला प्रज्वलित हो उठी । राधेमल स्तब्ध जहां खड़ा था,खड़ा रह गया । वह चंपा को भी बाहर न ला सका ।

छोटा पुजारी जाग आया । धीरे-धीरे पौ फ़टने लगी और मंदिर में भीड़ जमा होने लगी । राधेमल वहाँ खड़ा था ।

गाँव वाले उस पर लांच्छन लगा रहे थे । भगवान् जल रहे थे । चम्पा जल रही थी । मंदिर जल रहा था । मानव मूक खड़ा था........अपनी निष्ठुरता का दण्ड उसे इससे अधिक क्या मिलता ?

भरी कजरारी आंखें और सुन्दर ढली हुई नाक, नमकीन सांवला रंग, पतले नोकदार होंठ और उन पर निमन्त्रण देता हुआ एक बड़ा सा तिल। दूसरे तरखानों को उसी दिन लेखराज से चिढ़ हो गई। वह मन ही मन उससे जलने लगे। छः वर्ष बीत गये। प्रत्येक वर्ष चम्पो गर्भवती होती और एक सुन्दर स्वस्थ बच्चे को जन्म देती। वह तीन नटखट लड़के और एक गुड़िया सी लड़की की मां बन चुकी थी। बच्चे जनने से चम्पो के सौन्दर्य में किसी प्रकार की कमी नहीं हुई थी। वह वैसी ही सुन्दर थी, जैसी लेखराज ब्याह कर लाया था। गाँव वाले अभी भी जलते थे।

लेखराज तीन चार रुपये रोज कमा कर लाता, चम्पो बड़ी जुगत से खर्च करती और कुछ न कुछ बचा लेती। गाँव के कई ऐसे बढ़े-चढ़े लोग भी थे जिन्हें लेखराज की उन्नति देख बड़ी जलन होती। लेखराज के बच्चे और पत्नी किसी ऊंची जात वालों के परिवार वालों से कम न थे।

धीरे-धीरे लेखराज ने एक गाय मोल ले ली। जिस दिन गाय उसके घर आई, अन्य पेशावर तरखानो के हृदय पर सांप लोट गया। उन्होने तय किया इसका नाश किसी न किसी प्रकार करना होगा। आखिर उनकी सभा हुई और उनके योजनाशील दिमाग में यह बात आ ही गई। धीरे-धीरे गाँव के गुण्डे मेहर की मित्रता लेखराज से बढ़ने लगी। वह उसे सुरादेवी की आराधना सिखलाने लगा।

पहले लेखराज काम से सीधा घर आ जाता था, शरबत पानी पीकर सुस्ता लेता। अपनी पूरी कमाई पत्नी चम्पो के हाथ पर रखता था। अब वह रात बीते लौटता, शराब के नशे में चूर। चम्पो कुछ पूछती, तो वह उसे पीटने लगता, गालियां बकता। चम्पा आकाश की ओर देखती, वहाँ कोई परिवर्तन नहीं था। नीले आकाश में तारे उसी तरह खिले थे, जैसे पहले खिलते थे। हवायें भी उसी तरह चलती थीं। पूरा गाँव वैसे ही बस रहा था। खेत लहलहा रहे थे। कोल्हू के चलने की गूंज भी अभी तक उसी तरह ही आती जैसे पहले आती थी। केवल परिवर्तन था तो लेखराज के व्यवहार में।

लेखराज कभी काम पर जाता कभी न जाता। धीरे धीरे उसके ग्राहक घटने लगे। काम कम मिलने लगा, शराब की आवश्यकता बढ़ने लगी। यदि

:

अभी एक जूता साफ हो पाया था कि बाहर से किसी ने आवाज लगायी। छोटी लड़की ने आकर खबर दी कि दफ्तर का चपरासी आया है। उनकी भौंह में एक हल्का-सा बल पड़ा। बाहर पहुंचे तो चपरासी ने कहा—आपको साहब ने अभी बुलाया है।

—मैं नहीं आ सकता इस वक्त !—बाबू राधेलाल ने पता नहीं क्यों अपनी आदत के खिलाफ एकदम बिगड़ कर कहा !

—तो यही कह दूं ?—चपरासी ने जैसे उनकी हैसियत और उनकी बात को तोलते हुए व्यङ्ग किया !

राधेलाल थोड़ा-सा सकपकाये और अपनी आदत के मुताबिक नाक सिकोड़ कर उन्होंने जरा सोचने की कोशिश की, चपरासी की तरफ देखा और आजिजी से बोले—तुम काहे को नाराज होते हो, अब सोचो न जरा········एक तो दिन मिलता है, उसमें भी यह खिट-खिट····न ठीक से पूजा-पाठ, न····अच्छा देखो···· तुम जरा-सा बना जाओ।····कह देना घर पर नहीं मिले, कह आया हूं।

चपरासी एक क्षण खामोश रहा, तो बाबू राधेलाल सोच में पड़ गये, नाहक इस पर बिगड़ पड़े। भला इसका कौन-सा कसूर था ? वह तो खुद बेचारा हुकुम का बन्दा है। साहब ने कहा, बुला लाओ, यह चला आया। बिगड़ी बात और भी संभालने की गरज से बोले—तुम बस इतना कह देना। नहीं तो तुम भी दिन-भर दफ्तर में अटके रह जाओगे।

—हमारे लिए कोई फरक नहीं पड़ता, पर साहब को इत्तला कर दूंगा कि बाबूजी नहीं मिले; घर में खबर कर दी है।

—बस-बस ! सब संभल जायगा इतनी बात से।—और यह कहते-कहते वह चपरासी की सायकिल का हैंडिल पकड़े-पकड़े उसे सड़क तक छोड़ आये !

घर में घुसते ही उन्होंने कोट की ऊपर वाली दाहिनी जेब से गांधी डायरी निकाली और खोलकर देखा। शायद साहब ने पहले ही हुक्म दिया हो और उनकी याद से उतर गया हो।····रविवार छः तारीख वाला पन्ना खोला, उस पर कार्यक्रम नोट था।

(१) सफाई करना है, (२) मन्दिर जाना है, (३) राशन लाना है, (४)

दिवाली को केवल पन्द्रह दिन रह गये थे। चम्पा दुगुने उत्साह से खेत में काम करती। रात्रि को दीपक जला कर सफेद मिट्टी से घर को लीपती। रात को फटे हुए कपड़े सीती, मरम्मत करती। पुराने कपड़ो को जोड़कर नये का रूप देती। चम्पा को मजदूरी अच्छी मिल जाती, क्योंकि उनके गाँव को शहर से सड़क द्वारा मिलाया जा रहा था।

बड़े ध्यान से चम्पा ने आठ आने, चार आने, एक रुपया करके दस रुपये जमा किये। वह इस बार बच्चों को अच्छी अच्छी मिठाइयाँ खिलायेगी, दूध पिलायेगी। चाहे पति ने वादा किया था पर वह उस पर विश्वास नही कर सकी। उसने एक मिट्टी के बर्तन में यह दस रुपये के आने-दुअन्नियाँ संभाल कर रख दीं। चम्पा को पति पर अविश्वास था। अपने कपड़ो की पोटली में बांध कर रुपये रखेगी, तो वह अवश्य निकाल ले जाएगा। इस बार उसने बच्चो को मिठाई के लिए वादा दे दिया था।

एक ने जलेबियों की फरमाइश की थी, दूसरे ने लड्डूओं की, लड़की और छोटे लड़के को बर्फी बहुत पसन्द थी।

लेखराज भी इधर मेहर के चंगुल से निकल कर कुछ मजदूरी-करने लगा था। दिन को जितनी मजदूरी करता, रात को वह चोरी-चोरी शराब पी डालता। दिवाली से दो दिन पहले मेहर ने लेखराज को तंग करना शुरू किया। वह उसे समझाता रहा—वर्ष भर तो जुआ खेला अब दिवाली पर जब मौका आया है खेलने का, तो वह तैयार नहीं। लेखराज के पापी मन को तिनके का सहारा चाहिये था। उसके अपने मन का भी कोई स्थल तैयार था कि वह जुआ खेले।

उस दिन सारा दिन लेखराज प्रतीक्षा करता रहा। काम पर भी नहीं गया। चम्पा सड़क पर मजदूरी करने गई तो उसने पीछे से सारा घर छान डाला। बड़े लड़के ने मां को रुपये संभालते देख लिया था। लेखराज ने बड़े दिलासे से कहा—'मैं तुम लोगों के लिए कपड़े खरीद लाता हूं, मुझे बतलाओ तुम्हारी मां रुपये कहाँ रख गई है?'

बच्चे बुरी तरह लेखराज से डरते थे। उसे देखकर उन पर आतंक छा जाता। वे भयभीत हो उठते। बड़े लड़के को लगा बापू मुझे मार डालेगा। सच

शाम को वापस आये, तो मुंह सूखा हुआ था। जिस चबूतरे का सहारा लेकर सायकिल से उतरते थे, उसके ठीक कोने पर गोबर रखा था, सो पैर रखते-रखते बिदक गये और गिरती दीवार की तरह मय सायकिल सड़क पर पसरते-पसरते जरा-सा बच गये! पैजामे का मोहरा क्लिप से बन्द था, इसीलिए बचत भी हो गयी, नहीं तो मुंह के बल गिरते। सायकिल भीतर रखी ही थी कि देखा, लाला रामभरोसे बैठक में बैठे हैं। लाला रामभरोसे अपनी परचूनी की दूकान छोड़-छाड़कर बाबू बनने की नियत से एक फौजदारी के मुख्तार साहब के मुंशी हो गये थे। तहसील के तख्तों पर बस्ता रखकर बैठते थे। मुख्तार साहब के मुवक्किलों का हिसाब-किताब और मसलें वगैरा सब उन्हीं के पास रहती थीं और वह दिल में सरकारी नौकरी से गैरसरकारी नौकरी को बेहतर समझते थे, पर सरकारी नौकरी की बड़ाई इसीलिए करते थे कि देखा-देखी उनको यह यकीन हो गया था कि यहाँ कस्बे में जिसे बुरा समझो उसे अच्छा कहो। सो घुसते ही लाला बोले—काहे, राधे, इतवार को भी दफ्तर गये थे? हमारा तो ख्याल है कि सरकारी नौकरी में हजारों आराम है। इससे बढ़कर राजसी नौकरी दूसरी नहीं। पर तुम तो जिस दफ्तर में पहुंचे, मानों सब कार-बार तुम्हारे ही ऊपर आ गया।........काहे को जान दिये डाल रहे हो? कितने दिन की जगह मिली है?

—दद्दा, अगले हफ्ते तक एवजी है। स्टेनो बाबू अगले शुक्कर तक आ जायेंगे, बस फिर तो कहीं और काम ढूंढना है।—बाबू राधेलाल ने जवाब दिया।

—तब काहे को चिपटे हो इस तरह? कौन तुम्हारी मुस्तकिली हो रही है, जो दिन-रात लगे हो? अरे, अपने काम से काम। छुट्टी के दिन छुट्टी, काम के दिन काम।

—दफ्तर ये भी बढ़िया है, दद्दा, वो तो आज साहब का प्राइवेट काम था थोड़ा-सा, नहीं तो बड़े आराम का दफ्तर है।

—अरे, तुम तो हमेशा ऐसे ही कहते रहे। आज तक कम-से-कम बीस जगह रह आये हो, किसी दफ्तर की बुराई नहीं सुनीं हमने तुम्हारे मुंह से।

चम्पा की आंखों में खून उतर आया, उसने दोनों हाथों से तीनों बच्चों को पीटना शुरू कर दिया। पड़ोसिन ने आकर कहा—"आज क्यों मार रही हो, सुबह सुबह, त्यौहार का दिन, नहलाओ खिलाओ। तुम मां हो, कि डायन हो?"

पड़ोसिन अपनी ओर से आदेश देकर चली गई। चम्पा ने दर्द भरी दृष्टि से आकाश की ओर देखा। आकाश स्वच्छ था—नीला-नीला और श्वेत। वायु में जरा सी ठण्डक थी। चम्पा ने बच्चों को मारा तो जरूर परन्तु उसका हृदय हाहाकार कर उठा। सचमुच में वह मां नहीं डायन है। चम्पा का मन भर उठा। उसने चूल्हा भी नहीं जलाया। पड़ोसिन ने थोड़ी सी रोटी और चाय बच्चों को लाकर दे दी। चम्पा भूखे पेट रही। दिन भर हलवाई मिठाइयां बनाते रहे। पड़ोस में बच्चे, पटाखे छोड़ते रहे; चम्पा के कान में वह बम से भी अधिक छेद करते रहे। उसका हृदय रो देता। वह समझी नहीं क्या करे, क्या न करे।

लेखराज घर नहीं आया। वह अवश्य ही कहीं शराब पीकर पड़ा होगा। सब पति अपने घर थे, सब पिता अपने बच्चों को दुलार रहे होंगे। केवल लेखराज ही ऐसा पति और पिता है, जो घर से दूर है, बच्चों से दूर है।

चम्पा के बच्चे दिन भर पड़ोसियों के बच्चों का पटाखा चलाना सुनते रहे। बीच-बीच में मां को आकर तंग कर जाते, चम्पा उन्हें खाने को दौड़ती। उसका इससे बड़ा अपमान क्या हो सकता हैं। खून पसीने से कमाया हुआ थोड़ा सा धन ....कौड़ी-कौड़ी पति ले गया। अपने जिगर के टुकड़ों से छीन कर ले गया।

संध्या होते ही बच्चे घर आ गये।

"मां....तू इतने दिन मिठाई का वादा करती रही है। मिठाई कहां गई?"

"मां....बाहर दीप जल रहे हैं।"

"मां तुम उत्तर क्यों नही देती।"

चम्पा क्या उत्तर देती। काश! उसे पता होता कि लेखराज ऐसा करेगा। वह पन्द्रह दिन पहले ही मिठाई लाकर घर में रख लेती। बासी ही बच्चों को खिला देती।

पैसा इतना महत्वपूर्ण है! जीवन के हर सवाल का जवाब पैसा है। पैसे के बिना कुछ नही हो सकता। चम्पा की आंखों में अविरल आंसुओं की धारा

के जीवन में उस महकमे की अहमियत पर पूरी ईमानदारी से वे एक बड़ा बयान दे डालते। उनकी इसी आदत के कारण लोग उन्हें एक व्यर्थ सम्मान की दृष्टि से देखते थे, न अच्छा कहते थे, न बुरा।

लाला रामभरोसे ने दफ्तर की बात छेड़ दी, फौरन यह भी ख्याल आया कि अभी बाबू राधेलाल अपने दफ्तर के अनुभवों का पचड़ा ले बैठेंगे सो उन्होंने फौरन बात का रुख पलटते हुए कहा-भाई, मैं इसलिये आया था कि कल रात को नाती की खुशी में भोज है। बिरादरी में बुलउआ है तुम थोड़ा वक्त निकालो, तो मेरी मुश्किल हल हो जाय।

—हां, पहला नाती है कि मजाक है। दिल खोल के भोज दो, दद्दा। रही मेरी, सो जो काम सौंप दोगे, अपनी कोशिश-भर ठीक ही कर दूंगा। —बाबू राधेलाल ने जवाब दिया।

—तुम कल चार बजे शाम से आ जाओ, बस।

—बहुत ठीक। साहब से कहकर एक घण्टे पेश्तर आ जाऊंगा।

राम राम हुई और लाला रामभरोसे निश्चिन्त होकर उठ गए। राधेलाल ने बैठक के किवाड़े लगाए, जेब से गांधी डायरी निकाली और उस पर नोट किया, कल शाम चार बजे दद्दा के घर पर भोज का इन्तजाम करने जाना है। एक घण्टा पेश्तर छुट्टी के लिए बड़े बाबू से सुबह कहना है।

डायरी जेब में डाली और भीतर पहुंचे, तो पत्नी के कुछ कहने से पहले उन्होंने जेब से दो कच्चे नीबू निकाल कर घरौंची पर रखते हुए कहा—ये दफ्तर की बगिया के हैं। माली कहने लगा, बाबू, इतना रस है इनमें अभी की पकने पर तो मुसम्मी को मात करेंगे। वह तो चार–पांच दे रहा था, हमने कहा, दो काफ़ी है।

और वास्तविक बात यह थी कि चलते-चलते वह माली की नजर बचाकर फुर्ती से दो ही तोड़ पाए थे, अगर आस्तीन कांटों में न फंस गई होती, तो शायद एक–दो और मार देते।

पत्नी को जरा ठीक देखा, तो दूसरी जेब से रिबन की गिर्रियां निकालते हुए बोले—ये लो, तुम्हारा डोरा लपेटने के काम आ जायेगी।

वह निराश होकर लौट गई। एक दीपक उसकी पड़ोसिन उसके घर के सामने रख गई थी। चम्पा सोते हुए बच्चों के पास धरती पर बैठ गई। दिवाली की रात को भी बच्चे भूखे सो गये! ओफ! चम्पा का इतना परिश्रम व्यर्थ गया। जंगल में लकड़ी चुनना, खेत में दूसरों की फसल की कटाई करना, सड़क पर पत्थर तोड़कर अपना हाथ खून से रंग लेना।

दिन भर चम्पा सुस्ताती रही थी। इस समय मानों उसकी आंखों से कोई नींद छीन कर ले गया था! उसकी आंखें खुली थीं। उसका एक मन हुआ, किसी शराब की दूकान में पड़े लेखराज को कान पकड़ कर खेंच लाये।

धीरे धीरे गाँव निद्रा देवी की गोद में सो गया। चम्पा अपने भूत और भविष्य पर सोचती रही। उसका मन रह-रह कर कहता, वह भी मानव है। एक बार गांव में कोई बूढ़े नेता लेक्चर देने आये थे, उन्होंने भी कहा था—हर एक व्यक्ति को जीने का अधिकार है। चम्पा को भी। उसके बच्चों को भी। भगवान् की मूर्ति के आगे इतना चढ़ावा चढ़ा है। सारा पुजारी के घर जायेगा। ओफ! यह कैसा अन्याय है। चम्पा इस पाप को समाप्त कर देगी। वह अपने बच्चो के लिये जरूर मिठाई लायेगी।

चम्पा की टांगों में न जाने कहाँ से शक्ति आ गई। वह भागी और मंदिर की सीढ़ियों पर पहुंच उसने सांस लिया। उस समय रात्रि का चौथा पहरा था। कोई भी व्यक्ति मंदिर के आसपास न था। निधड़क मंदिर के भीतर चली गई उसके मन की साध थी दूसरे लोगों की तरह वह भी भगवान् के चरणों में प्रणाम करे। उसने वैसा ही किया, फिर जल्दी से एक थाली खाली करके उसमें सब तरह की थोड़ी थोड़ी मिठाई भर ली। फुर्ती से उसके हाथ चलने लगे। दिन भर की भूखी प्यासी थी। फिर भी आज न जाने कैसे शक्ति उसके हाथों में थी।

दो तीन दीप उठा कर चम्पा ने थाली में रख लिये। फिर थाली उठाकर कांपती टांगों ले चलने लगी, तो पानी के लोटे से टकराई। लोटा आवाज करता हुआ पक्के फर्श पर जा गिरा। पुजारी राधेमल न जाने कहां से आगया।

'कौन !! तू !! तेरी इतनी मजाल? शराबी की पत्नी, चोर! भंगिन! अभागी तू मंदिर में कैसे आई।'

और उन्हें लगा कि कुछ अनर्थ हो रहा है। लाला रामभरोसे पर क्रोध आया कि बिरादरी में वह नया चलन कैसे चलेगा। आज तक भोज में असली घी के सिवाय किसी गरीब-से-गरीब बिरादरी वाले ने यह घासलेट नहीं इस्तेमाल किया। लोग सालों पहले से घी जोड़ते है, पर होता सब असली घी में है अगर कहीं पंगत में पता चल गया कि राधेलाल ने बैठकर अपने सामने यह सब होने दिया तो, तो ?....गांव से भी रिश्तेदारी के दस-बीस जने आयेंगे, तब कैसी थुक्का-फजीहत होगी गांव में, और सब उन्हीं पर आ जायगा कि राधेलाल कैसे बैठे यह सब करवाते रहे ?

बात असल में यह थी कि कस्बे के सारे ही महाजन-परिवार गांव से उखड़े हुए थे। कोई तीन पीढ़ी से यहां था, कोई दो पीढ़ी से और कोई अभी-अभी आया था। कस्बे आने वाले घरानों में सबसे पहला घर राधेलाल के बाबा का था, जो लाला ही पुकारे जाते थे। इन लाला रामभरोसे की पिछली पीढ़ी ही कस्बे में आई थी। राधेलाल और रामभरोसे में भीतर-ही-भीतर असली कस्बाती होने की थोड़ी-बहुत प्रतियोगिता भी चलती रहती थी, वैसे सारे महाजन परिवारां में कस्बाती होने की होड़ साधारण बात थी, इसलिए ढोलक मंजीरा के साथ-साथ लाल रामभरोसे ने दो घण्टे के लिए बैटरी का लाउडस्पीकर भी लगवाया था। गांव के संस्कारों से बंधे, कस्बाती जिन्दगी की होड़ में ये सारे ही परिवार भीतर से टूट चुके थे। लेकिन तीज-त्यौहार, भोज-सराध और गमी-खुशी के सारे आयोजन अभी भी उसी गंवाई दरियादिली, इफरात और खुलेपन से होते थे। कस्बाती चुस्ती और काइयांपन धीरे-धीरे घर कर रहा था, पर बिरादरी के मामले में वही गंवई ठाट जरूरी समझा जाता। नाक ऊंची रखी जाती थी।

बाबू राधेलाल ने लाला रामभरोसे को बुलाकर पूड़ियों पर बैठने से इन्कार कर दिया। लाला रामभरोसे ने बहुत समझाया—अब गांव की बात और मरजाद जाने दो, राधे। वहां हर घर दूसरे घर के काम-काज मे सिरधा से घी अन्न पुजाता था, तो सब निभ जाता था। अब यहां कितने मेरे घर के लिए सिर रोया है, सब ही अकेले जोड़ा बटोरा है।

पर राधेलाल को समझ में न आया। बोले—तो किसी और को बैठा दो

# श्री कमलेश्वर

(जन्म सन् १९३२)

श्री कमलेश्वर का जन्म उत्तर प्रदेश के मैनपुरी नामक शहर में हुआ था। वहीं वे पले-बढ़े और आरम्भिक शिक्षा भी वहीं मिली। बाद में उच्चतर शिक्षा के लिए प्रयाग आए और एम० ए० करने के बाद स्वतन्त्र प्रकाशन संस्था खोल कर वहीं स्थायी रूप से रहने लगे। श्री कमलेश्वर की अनुभूतियां अपने कस्बे की जिन्दगी में रसी-बसी हैं। जब वे उनका अङ्कन करने बैठते हैं तो उनमें घर की याद की भी एक सहज संवेदना आ जाती है। वातावरण की सृष्टि करने में आप असाधारण रूप से सफल हैं। आपकी एक लम्बी कहानी 'राजा निर-वंसिया' विशेष महत्व प्राप्त कर चुकी है।

अब तक आपके दो कहानी संग्रह (राजा निरवंसिया और कस्बे का आदमी) और एक उपन्यास (एक सड़क सत्तावन गलियां) प्रका-शित हो चुके हैं।

—संकलित

तीन चार रोज हुए पर बार-बार वही बात मन में घुमड़ती कि यह मुहर्रिरी मिल सकती,तो थोड़ा संकट कटता, पर लाला रामभरोसे का ध्यान आते ही सारे ख्याल दम तोड़ देते। शायद उन्होंने किसी दूसरे की सिफारिश कर भी दी हो।

उस वक्त शाम होने को थी। बाबू राधेलाल आंगन में पड़ी चारपाई पर बैठे ध्यान से अपनी गांधी डायरी देख रहे थे कि दरवाजे से आवाज आई—गमी को बुलव्वा है, लाला रामभरोसे स्वर्ग सिधारे हैं।—नाई बिरादरी में खबर कर रहा था। राधेलाल दौड़कर बाहर आये, जल्दी पूछ-ताछ की, तो पता चला कि अर्थी घण्टे भर में उठ जायगी।

भीतर आए। पांच-सात मिनट सोचते रहे। पत्नी से धोती ली और चल पड़े। पर कुछ सोचते हुए देहरी से वापस लौट आए। धोती सिर के नीचे धरे चित लेटे रहे, फिर उठे और पत्नी से बोले कि अभी धोती रहने दो! एक जगह जरा जल्दी काम से हो आयें, तब गमी में जाएंगे। पर फिर सोच साच-कर उन्होंने धोती बगल में दबाई और चल दिये। चलते-चलते सोचने में मशगूल थे। आखिर उन्होंने धोती एक जान-पहचान की दुकान पर रख दी और दस मिनट बाद वह मुख्तार साहब के मकान के हाते में उनकी आरामकुर्सी के सामने विनत खड़े थे और मुख्तार साहब कह रहे थे—आप ही राधेलाल हैं? अच्छा अच्छा, रामभरोसे ने भी आपको एवजी पर रख लेने को कहलवाया था। बेचारे बड़े नेक थे। वे तो हमारे मुन्शी पर घर के बड़े बूढ़ों की तरह रहते थे। परसों देखने गया था। तब भी उन्हें काम की बड़ी फिक्र थी। आपकी तो कुछ रिश्तेदारी भी थी उनसे। उस रोज भी आपका नाम लिया था तो ठीक है, मातबर आदमी है, कल से आ जाइए।

और बाबू राधेलाल पसीने में नहाये खड़े थे हतबुद्ध। आंखें एकदम स्तब्ध थीं, जैसे पथरा गयी हों।

भारी कदमों से वह मुख्तार साहब का अहाता पार करके श्मशान की तरफ जा रहे थे और इक्कीस बरस की नौकरी पेशा जिन्दगी में इन्हें आज पहली बार अपने छूटे हुए गांव की याद आई थी, एक कसक भरी याद।

# नौकरी पेशा

गाँव के उखड़े हुए लोगों को कस्बा पनाह देता है। यहाँ की जिन्दगी गाँव की आबादी को चुम्बक की तरह खींचती है। इधर तीस चालीस बरसों से कई महाजन-परिवार यहाँ आ चुके हैं और उनको देखा-देखी और आते चले जा रहे हैं। इन लोगों में जल्दी से जल्दी कस्बाती बन जाने की होड़ सी लगी रहती है। कस्बाती यानी गांव के लाला से बाबू बन जाने की होड़। राबेलाल के बाबा को लोग लाला ही पुकारते रहे और बाप को भी यही संबोधन मिला, क्योंकि वे परचूनी की दूकान चलाते थे। पर राबेलाल ने दसवां भी पास किया था और बगुले की चोंच मारने की तरह तर्जनी से टाइप करना भी सीखा था, इसीलिए उसे बाबू का खिताब मिलने में कोई कठिनाई नहीं हुई। अब वह दुकान पर क्या बैठते, नौकरी को गले लगाया। बाबू राबेलाल कह कर कोई पुकारता, तो जैसे उनका रोम-रोम पुलक उठता और उन्हें लगता कि जीवन की सार्थकता तो अब हाथ आयी है।

उस दिन इतवार था। पहली तारीख के बाद यह पहला अवसर था। इसलिए घर-गिरस्ती का थोड़ा काम भी सिर पर था। फ़िर भी बाबू राबेलाल काफी इत्मीनान से अगले हफ्ते के लिए अपने पुराने पम्प जूतों को साफ कर रहे थे। पास खटिया पर कोट रखा था, जिसे उनके आवारा लड़के ने मैट्रिक तक पहनकर छोड़ा था और जिसकी आस्तीनों में कोहनियों की जगह छेद के अनुसार छोटे-बड़े प्योंदे लगे थे। एक मर्तबा उलटवाने के कारण ऊपर वाली जेब बायीं से दाहिनी ओर आ गयी थी, जिसमें फाउन्टेनपेन-नुमा मोटी पेन्सिल हर वक्त लगी रहती और एक छोटी-सी निहायत गन्दी गांधी डायरी पड़ी रहती थी।

आज उनके लिए एक ही काम मुख्य था, सफाई। क्योंकि वह जरा कायदा-पसन्द आदमी हैं और उनकी हफ्तेवार सफाई उसी कायदा पसन्दी की योजना का एक अङ्ग है। सफाई तीन चीजों की होनी थी, जूते, कोट और सायकिल।

ही मदन को भिड़की और पति को उनके लाड़ले के खिलाफ शिकायतों का पुलंदा मिला कि वह पढ़ता-लिखता नहीं, गमले के सारे फूल सत्यानाश कर डाले, पड़ोस के घर में पत्थर फेंके, खरगोश के ऊपर सारी फाउन्टेन पेन की स्याही उलट दी। आदि।

चन्दन बाबू मुस्कराते हुए मदन को देखते रहे। मदन कभी पिता कभी मां की ओर सहमा सा बैठा देखता रहा। अन्त में पिता और पुत्र की आंखें जब परस्पर मिलीं तब जाकर उसे फिर से आश्वासन मिल गया।

'क्यों मिस्टर! मां को तंग करते हो?'

'दादा, मैं खरगोश का रीछ बना रहा था।'

'स्याही से? खूब।'

'रीछ काला होता है कि नहीं?'

'अब बताओ भाई, मदन ने क्या बुरा किया? आखिर रीछ काला होता है या नहीं?' पत्नी और नाराज हुई।

'शह मिलने पर लड़का बिगड़ेगा नहीं तो क्या होगा! लड़के को भला इस तरह सर पर क्यों चढ़ाना चाहिये?'

'बता तो चुकी हो। खराब करने के लिए। दूसरी वजह और हो क्या सकती है।' यह कह कर वह जोर से हंसे।

'दादा, हाँ–एक चीज और।'

'वह क्या बेटा?'

'तितली के बच्चे लेते आना।'

'काहे के बच्चे?' –जाते जाते लौट कर सोमती ने पूछा।

'तितली , बता तो रहा है।' –चन्दन बाबू ने मुस्करा कर दुहराया।

'और छोटा सा बिच्छू।' –मदन ने मन में अपनी आखिरी–मांग पेश की।

'वह अपनी मां से कहना वह मंगा देगी।'

पत्नी की ओर से भुनभुनाहट सुन पड़ी।

सम्भव हो तो शाम को साहब के घर हो आना है या तिवारी कन्या पाठशाला के मैनेजर साहब से मुलाकात कर आना है, (५) आज जल्दी सो जाना है।

उन्होंने जेब से मोटी पेन्सिल निकाल कर डायरी के उसी पन्ने पर नोट किया, सुबह साहब से मिलने गये। और उसे उसी दाहिनी जेब में रख दिया।

पत्नी ने उन्हें इस तरह ख्याल में डूबा और डायरी पर नोट करते देखा, तो क्रुद्ध के भुनभुनायी—कुसुमा के व्याह में तुम्हारे सोचने के लिए अलग कोठरी का इन्तजाम करा दूंगी।····कौन आया था।

—चपरासी था, साहब ने बुलाया है,—राधेलाल बोले।

—तो जाओ न! साहब की गुलामी से फुरसत मिले, तो घर को देखना, तुम्हें खुद इसमें मजा आता है। जाके दफ्तर में बैठ गये, सब काम-धन्धे से बरी।····उस लाड़ले ने इम्तहान का बहाना बना रखा है।········मेरी बला से! चाहे कुछ हो या न हो।····

—मैंने तो चपरासी से साफ कहला दिया कि मैं नहीं आ सकता। कौन मुस्तकिल नौकरी है।····भले छूट जाय। दूसरी देख लूंगा।—राधेलाल ने कहा और जैसे उन्हें सचमुच महसूस हुआ कि इस वक्त चपरासी से साफ इन्कार कर देना था, यह भी कोई बात हुई। आखिर कोई अपना घर कब देखे, एक तो दिन मिलता है। और दूसरा जूता साफ करने में मशगूल हो गये।

सफाई के बाद उन्हें पैरों में डाल और कोट पतलून पहनते हुए पत्नी से बोले—जरा देख ही आऊं। असल बात यह है कि साहब का मुझ पर जितना इत्मीनान है, उतना बड़े बाबू पर भी नहीं है। मेरे टाइप से बहुत खुश है। कहते थे, इतने जिले घूम आया हूं, पर तुम-जैसा होशियार टाइप बाबू नहीं मिला। बड़ा अपनापन मानते है। हमेशा घर के आदमी की तरह तुम कह कर बात करते हैं।

बहुत ऊंचा स्वाभिमान जैसे अंधा होता है, वैसे ही पति की प्रशंसा से किसी भी पत्नी का स्वाभिमान ऊंचा उठकर उसे अंधा कर देता है। कुछ ऐसा ही इस वक्त हुआ। और राधेलाल सड़क पर साइकिल लाये, उसकी कील पर एक पैर रखकर लंगड़ी मुरगी की तरह दस-बारह कदम फुदके और चढ़कर दफ्तर चले गये।

'सिगनल वाली !' –चंदू ने चिहुंक कर प्रशंसा भरी आंखों से उसकी ओर देखते हुए कहा।

'दादा अब पहुंच गये होंगे। खरीद रहे होंगे। खरीदा और वापस घर। 'चंदू, तेरे दादा कब आयेंगे ?'

'मेरे पिताजी ? पता नहीं। मां कहती है वह जहाँ गये हैं वहां से लौट कर कोई नहीं आता।' कुछ देर दोनों एक दूसरे की ओर देखते बैठे रहे – फिर मदन बोला।

'कलकत्ते से भी आगे ?'

'हाँ, उससे आगे। सबसे आगे। बहुत दूर।'

'फिर ?'

'वह नहीं आयेंगे। मैं उनका रस्ता देखा करता हूं।' चंदू की आंखों में आंसू उमड़े।

'चाचा सामान नहीं लाता ?' –मदन ने सहमते हुए पूछा।

'नहीं, वह मारता है।'

'मारता है ! और मां ?'

'मां ? वह रोती है।' –आंसू रिस कर बाहर आ निकले।

'कोई बात नहीं ! मैं तुझे अपना रीछ दे दूंगा।'

'रीछ ! हाथ निकालने वाला ?'

'हाँ-हाँ, बन्दर भी।'

'बन्दर भी ! बोलने वाला ?' –आंसू कम। सिसकियाँ कम। आंसुओं के कोर पर हंसी की चमक भी उभरी।

'दोनों मिलकर सारे खिलौनों से खूब खेलेंगे !

'दोनों मिलकर !!'

'इस बार दोनो खुल कर किलकारने लगे।

कुछ देर बाद चंदू ने कहा।

'मैं अपने पिताजी को बुला सकता हूं।'

'कैसे ?'

और सचमुच बात ऐसी ही थी। बाबू राधेलाल क्लर्क, टाइप बाबू, लायब्रेरियन और न जाने क्या-क्या रह चुके थे, यानी कोई महकमा ऐसा न था, जिसमें उन्होंने कुछ दिन न गुजारे हों। चुङ्गी से लेकर जजी, कलक्टरी तक गये थे और स्वामीजी के भण्डारे के हिसाब-किताब रखने से लेकर शहर के पुस्तकालय के लायब्रेरियन तक रह चुके थे। सरकारी, ग़ैर सरकारी, सभी महकमों के लिए बाबू राधेलाल स्टेन्डिंग कार्यकर्त्ता थे। जब जिस महकमे को उनकी जरूरत पड़ती, बुलवा लेता। खाली होते तो चले जाते, नहीं तो इन्तजाम करा देते। पहुंच भी उनकी इतनी थी कि नौकरी चाहने वाले ताजे नौजवानों के सामने उन्हें ही लिया जाता, और बात भी ठीक थी, क्योंकि किसी दफ्तर में लीव वेकेन्सी हुई, तो नया आदमी रखकर कोई क्या करे और फिर बाबू राधेलाल की इक्कीस बरस की साख थी।

शहर भर के ऐसे ठिकाने जहाँ-जहाँ नौकरी मिल सकती थी, सबकी खबरें उनके पास रहती थीं कि कौन-से बाबू कब और कितने दिन की छुट्टी पर जा रहे हैं, कौन छुट्टी बढ़ायेगा या उनके आने पर फ़िर कौन जा रहा है।

कोई नयी जगह होती, तो वह अपने को उसके काबिल न पाते, क्योंकि उसमें शुरू से सर्टिफिकेट वगैरा दिखाने पडते, डाक्टरी जरूरी होती और उनके मुताबिक लाखों झंझट होते, जो उनके बस के नहीं। इसलिए हर दफ्तर को वह प्यारे थे और उन्हें हर दफ्तर प्यारा था। किसी महकमे की बुराई आज तक उनके मुंह से नहीं सुनायी पड़ी। पता नहीं, कब किस महकमे की जरूरत पड़ जाय। कोई हफ्ते भर की छुट्टी जाय तो, और चार महीने की जाय तो, बाबू राधेलाल यकसां जोश-खरोश से नौकरी को सिर ओढ़ लेते थे।

कोई चपरासी नाराज हो जाय, तो रात की नींद हराम हो जाती थी, कोई साथ वाला जोर से बात कहदे, तो दिल बैठने लगता था। खुद बहुत धीमे बोलते थे, कायदापसन्द और सलीकेमन्द आदमी थे और अपने को नौकरी-पेशा कहने में गर्व का अनुभव करते थे। कोई पूछे कि, कहिए, क्या काम करते हैं? तो बजाय यह कहने के कि जजी में नकलवीस है या तहसील में पंचायत क्लर्क हैं, वह बड़े विनय से कहते, जी नौकरी पेशा आदमी हूं। और उन दिनों जिस दफ्तर में काम करते, उसके आराम, वहाँ के बाबू लोग और अफसर और जनता

रात में आखिर उसने मां से पूछा ही तो—

'मां, कब आयेंगे दादा ?'

मां रो दी।

'क्यों रोती है मां ? मैं भी रोने लगूंगा।'

'मां' न कुछ कह पाई न बता सकी।'

'मां' मुझे बताती क्यों नहीं ?'

'मां' ने बोलने की कोशिश जरूर की पर उसके गले से एक शब्द न निकल पाया। बोल न पाई।

'मां' दादा क्या कलकत्ते से आगे चले गये ?' आशंका से मदन ने पूछा ! सहसा चंदू के पिता की उसे याद आ गई। इस बार मां बोली—

'शायद हां बेटा।'

'कहाँ ?' मदन घबरा गया।

'बड़ी दूर ! तेरे नाना गये हैं पता लगाने।'

'कब आयेंगे वो ?' मदन अधीर हो उठा। मां फिर से रो पड़ी। मदन अप्रतिभ, किसी तरह संभल कर बोला—

'तू रो मत मां। मैं चिट्ठी लिखता हूं अभी। दादा को फौरन आना पड़ेगा।'

वह बिस्तरे पर जा पड़ी। सिसकियों की आवाज कमरे में गूंजती रही। मदन दादा की मेज पर प्रकाश के नीचे झुका हुआ एकाग्र-चित्त चिट्ठी लिख रहा था। उसी को देखते देखते जाने कब सोमती की आँख लग गई। वह चौंक कर उठी तो सुना—बगल वाले कमरे में कोई धीरे-धीरे थाली बजा रहा था।

मदन मेज पर नहीं था।

वह मेज के पास गई।

कागज पर टेढ़े मेढ़े अक्षरों में दादा को लिखी गई अध लिखी चिट्ठी पड़ी थी। लिखा था—दादा,

पत्नी ने देखा तो 'हुं' करती हुई बोली—इनमें डोरा लपेटा जायगा ? ये किस काम की हैं। कुसुमा कब से एक पेंसिल के लिए कह रही है।

—पेंसिल रोज-रोज थोड़े ही धरी है। मिल जायेगी पेंसिल भी लाने को चाहे जो ले आऊं कोई चूं नहीं करेगा। पर ऐसे अच्छा तो नहीं लगता। दफ्तर की रुसवाँ-भर चीज मेरे पास से इधर-उधर नहीं होती। डाकखाने वाले अभी तक याद करते हैं। तेईस दिन उनके यहाँ नौकरी की थी, एक पाई का फरक नहीं पड़ा। सब अभी तक मानते हैं, पोस्टमास्टर साहब अभी तक याद करते हैं। अपना काम चौकस चाहिए। चौकसी के लिए अकल, आंख और वक्त की जरूरत है। आज चलते वक्त साहब कहने लगे, तुम्हारा बड़ा सहारा है, राधेलाल बाबू। तुम्हारी हिम्मत थी कि इतना बड़ा काम निबट गया। इसीलिए तुम्हें तकलीफ दी।....यह छोटी बात है भला! जो काम कहो, साहब से हाथ पकड़ के करा लूं।

इतना सुनकर पत्नी तृप्त थी, उसकी आंखों में पुरुषार्थी पति के लिए प्रशंसा थी और राधेलाल निश्चिन्त हो गए थे।

दूसरे रोज गांधी डायरी के मुताबिक बाबू राधेलाल चार बजे से कुछ पहले ही पीछे कैरियर में दफ्तर की दो पतली फाइलें इस तरह डोरी से बांधे हुए पहुंच गए, जैसे कोई जिन्दा मुर्गा इस तरह बांधकर लाये हो कि कहीं पीछे से उड़ न जाय। बात असल मे यह है कि वह सुरक्षा के बेहद कायल हैं। पीछे कैरियर पर कोई भी चीज खूब अच्छी तरह कसकर बाँध लेने के बाद वे निश्चित हो जाते हैं कि अब गिरेगी नहीं। कैरियर टूट कर गिर जाय, यह बात दूसरी है।

पहुंचते ही लाला रामभरोसे से मिले, तो सबसे पहले उन्होने कैरियर से फाइलें खोलकर उन्हें बकस में रख आने की ताकीद की, कपड़े में लपेटकर कि कोई पुरजा इधर से उधर न हो जाय और तब काम के लिए पूछा। भोज की तैयारी हो रही थी।

राधेलाल को पूड़ियां निकलवाने का काम सौंपा गया। भट्ठी सुलग रही थी और कड़ाह चढ़ा था। हलवाई घी के इन्तजार में बैठा था। राधेलाल एक स्टूल पर जाकर जम गये। घी के कनस्टर आये, तो देखते ही राधेलाल की भौंहें सिकुड़ी-घासलेट!

तालाव के किनारे गाड़िया लुहार वसे हुए हैं। आज से नहीं, वर्षों से हैं यह वस्ती टूटी-फूटी, गन्दी है। गाड़ियों के नीचे इनका परिवार कीड़े-मकोड़े की तरह पड़ा रहता है। इस वस्ती के रहने वाले लोहे का सामान बनाकर वेचते हैं। अत्यन्त दरिद्र और अनपढ़ है—ये चित्तौड के लुहार—आन के पक्के दावेदार!

बीकानेर में कव आए, यह इतिहास की बात है, पर अव इनकी प्रतिज्ञा पूरी होने पर भी ये यही रहते हैं—तालाव के किनारे, कच्चे-भांगे घरों में। गाड़ियों के नीचे।

अभी रूसी मिट्टी के चूल्हे में रोटियां सेंक रही है। लालटेन के अभाव में वह बार-वार रोटी को उतार कर अग्नि के प्रकाश में देखती हैं कि रोटी कच्ची है या पक्की। गर्मी के कारण उसके भरे मुख पर पसीने की बूंदें चमक आई है। वह हर पांच मिनट बाद अपने बेटे छनिया को पुकार लेती है।

अचानक छनिया का दोस्त चूहा आया। वह बहुत घवराया हुआ था। उसकी सांस तेज चल रही थी। वह उतावली से बोला, 'रूसी, ऐ रूसी, तेरा छनिया पेड़ से झूल रहा है।'

'कौन से पेड़ से'?'

'वही मावणियांजी वाले से।'

'हे राम, ऐसे लड़के से मैं बांझ होती तो चोखी!' एक मिनट तक रूसी खामोश रही, फिर बोली; 'झूलने दे उसे, कभी मावणियाजी उस नालायक को लूला-लंगड़ा करके बैठा देगी तो सब भूल जायेगा।'

'अभी संझा का वक्त है तू उसे बुलाती क्यों नही?'

'मैंने कह दिया न कि उसे मरने दे।'

रूसी का इतना कहना था कि एक और बच्चा आया।

'रूसी, रूसी, तेरे छनिए को काट लिया!'

'तो जा तू भी उसे काट ले।'

'नही रूसी, तेरे बेटे को सांप ने काट लिया।'

'सांप ने!' हाथ की रोटी हाथ में रह गई और तवे की तवे पर। वह हठात् उठी। 'कहां है छनिया!' वह भागी, 'हाय मेरे छनिए को सांप ने काट लिया, काले ने डस लिया!'

पूड़ियों पर। मैं जिमाने का काम कर दूंगा। रही कहने की बात, सो मेरे मुंह से किसी विरादरी वाले के सामने यह वात नहीं पहुंचेगी कि भोज घासलेट में हुआ है, बस?

वात में अड़ंगा पड़ जाने के कारण लाला रामभरोसे ने मुख्तार साहव से मेहनताने वाले जमा हिसाव से रुपये निकाले और फौरन देसी घी दूकानों से मंगाया गया और भोज हुआ। भोज तो हुआ, पर बाबू राघेलाल के मन में चोर घुस गया कि लाला बुरा मान गए हैं और किसी आड़े वक्त इज्जत उतारने से वाज न आयेंगे। पर जो हो गया, सो हो गया, अव उससे निस्तार ही कहां था।

थोड़े दिन गुजरे। वावू राघेलाल की एवजी वाली नौकरी छूट गई थी और तब से कहीं काम का जुगाड़ नहीं बैठ रहा था। सुवह से मुलाकातें करने निकल जाते, पर इधर तीन महीने से वेकारी ऐसी अड़ गयी थी कि कुछ समझ में न आता था। एक रोज घूमते-घूमते तहसील जा पहुंचे। लेखपालों से मिले और कुछ थोड़ा रजिस्टर भरने का काम ठेके पर ले आए। आवादी के नक्शे तैयार हो रहे थे। लेखपालों को मर्दुमशुमारी के पांच-पांच नक्शे तैयार करके देने थे। काम वहुत था। कुछ सिलसिला निकला। उस दिन रजिस्टर दवाकर तहसील से वाहर आये, तो स्टाम्प वेंचने वाले मुन्शीजी से दुआ-सलाम हुआ और पता चला कि लाला रामभरोसे को फालिज मार गया है उनका तख्त सूना पड़ा है।

पता नहीं क्यों, राघेलाल को इस खवर से कोई दुख नहीं हुआ, पर दिखाने को बोल ही पड़े—मुझे टोकते थे कि काहे जान दिए देते हो, और खुद पड़ रहे।

—अरे तीन दिन पहले तक काम पर आए थे। अकस्मात् सव हुआ। उसी दिन या एक दिन पहले तुम्हारी वात आ गई, तो लाला कह रहे थे कि राघेलाल में वड़ा दम है। उन्हीं से पता चला था कि आजकल वेकार हो तुम। लाला रामभरोसे की जगह तव तक एवजी कर लो। ठीक हो जायं, तव अपने छोड़ देना। मुख्तार साहव का भी काम न हर्ज हो।

वात राघेलाल को जंची, पर वह जानते थे कि लाला रामभरोसे को सपने में भी पता चल गया कि वह उनकी एवजी के लिए तैयार है, तो किसी दूसरे आदमी को सिफारिश से वहां पहुंचा देंगे। वह भला राघेलाल के लिए कुछ होने देंगे।

कोचवान आया। सेठजी ने उसे आँख का संकेत किया जिसे रूसी ने नहीं देखा। फिर उतावली से बोले, जल्दी इक्का तैयार करो, बेचारी के बेटे को साँप ने काट लिया है।'

कोचवान नीची गर्दन करके बोला, सेठजी, इक्के की धुरी टूट गई है, वह काम नहीं देगा।'

'तुझे किसने नौकर रखा। तू जानता नहीं, बेचारी रूसी का एक बेटा है। जा रूसी जा। तेरे भाग्य ही खोटे हैं। मेरे इक्के की धुरी ही टूट गई। क्या करूँ ?

रूसी पर पहाड़ टूट पड़ा। वह इधर-उधर भागी पर उसे कोई भी दूसरी सवारी नहीं मिली। वह पुनः घटनास्थल पर आई उसका बेटा छनिया पड़ा था—निश्चल, निस्पन्द और नीरव ! उसके मुँह पर फेन आ रहे थे। उसे देख कर हृदय फट पड़ा ! ममता की चीखों ने उपस्थिति को कंपा दिया। वह पछाड़ खाकर अपने बेटे पर गिर पड़ी। उसके गालों को चुम्बनों से भर दिया। रोती-रोती बोली, 'मेरे भाग फूट गए, मेरे भाग फूट गए !'

'बच्चे को गोदी में लो और चलो।' एक जवान लुहार चेतू बोला।

रूसी ने तुरन्त अपने बच्चे को गोद में उठाया और चल पड़ी।

उसके कदम तूफान की गति से उठे। उसके साथ के लोगों ने उस दिन जाना कि ममता कितनी बलवान होती है।

भागते-भागते वे वहाँ पहुंचे। झाड़गरों ने छनिया को देखा और व्यथित स्वर में बोले, 'देर कर दी, अब तो यह मिट्टी हो गया।'

रूसी छनिया-छनिया कह कर चिल्ला पड़ी। एक उन्मादग्रस्त नारी जैसा प्रलाप ! मां का करुण-क्रन्दन ! दुःख, चरम दुःख !

बड़ी मुश्किल से उसे घर तक लाए।

आंगन में छनिया की लाश पड़ी थी। उसके पास रूसी दो स्त्रियों की बाहुओं में बँधी बैठी थी। वह बार-बार छनिया-छनिया कहकर चीख रही थी। उसके आंसुओं को कोई भी सहन नहीं कर पा रहा था।

# श्री गंगाधर शुक्ल

जन्म सन् १९२१ नैनीताल,स्कूल की शिक्षा कलकत्ते में मिली। उसके बाद कानपुर में १९४१ से आल इन्डिया रेडियो में प्रोग्राम असिस्टेन्ट पद पर कार्यारम्भ किया। बीच में दो वर्ष के लिए अन्यत्र पब्लिसिटी विभाग में भी रहे। तब से लगातार आकाशवाणी में ही दिल्ली, लखनऊ और जयपुर में ही स्थानीय केन्द्रों पर प्राय: साहित्यिक तथा नाटक विभाग में रह कर कार्य करते रहे। रेडियों के लिये २५० से अधिक रचनाएँ लिखीं जो बहुत ही लोक प्रिय हुई। अब तक नाटक-कहानी–आदि के क्षेत्र में काफी काम कर चुके हैं। आपके दो नाटक संग्रह उत्तर प्रदेश सरकार से पुरस्कृत हुए है।

इस समय आप आकाशवाणी दिल्ली के दूरदर्शन विभाग में काम कर रहे हैं।

**स्वयं की लेखनी से**

**नवीनतम रचना**

**नाव्यय वेला (एकांकी संग्रह) : गंगाधर शुक्ल**

**प्रकाशक—कल्याणमल एन्ड सन्स, जयपुर मूल्य २.५०**

कुछ झल्ला कर बोला, यह कैसा पागलपन है तेरा ? बताती क्यों नहीं, क्या बात है ?'

रूसी के पास सोई हरखा की बहू जाग उठी। बोली, 'जुल्म हो गया मेरे बेटे, कहते हुए छाती फटती है,'

'क्या हुआ काकी ?'

'सुनने के लिए छाती पत्थर की बना ले'

इसी बीच रूसी फूट-फूट कर रोने लग गई थी। सेजू स्वयं घबरा गया। अन्धेरे में पड़ी लाश उसे दीख नहीं रही थी।

काकी बोली, 'हमारे करम फूट गए, छनिया हम से रूठ कर चला गया। उसे सांप ने काट लिया। यह रही उसकी मिट्टी।'

'छन्नू' कह कर वह धरती पर पड़ी लाश को उठाकर गले से लिपटाने लगा। वह इतने जोर-जोर से रो रहा था कि सारी बस्ती के लोग जमा हो गए। सबने उसे सांत्वना दी, समझाया और चेनू उसे अपने पास ले आया।

× × × ×

रात का गहरा सन्नाटा छा गया। भयावह और मृत्यु-सा।

उस सन्नाटे में सेठ की हवेली के आगे इक्का रुका। मुनीम उस इक्के से उतरा। सेठजी ने उतावली में पूछा, 'क्यों क्या हुआ ?'

'इक्कीस हजार का सौदा करके आया हूं।'

'तुम चिन्ता न करो, मेरा सपना कभी झूठा नहीं हो सकता। तुम्हें याद है न, एक बार मैंने सपने में नर्गिस को देखा था और जब नवां ही आया था। फीचर के सट्टे में ने ही अक्षर मिलता है। कल इतवार है, परसों रुपया ही रुपया समझो !'

'यदि नहीं आया तो·······?'

'बस' मुझे तुम्हारी यही बातें पसन्द नहीं आती हैं। पहली बात मैंने सपने में सांप देखा, दूसरी बात, एक सच्चे सांप ने रूसी के बेटे को काटा। सांप ने जिस तरह रूसी के बच्चे को काटा, उसी तरह हम दूसरे सट्टे बाजों को काट लेंगे। परसों सात पक्का है ?'

: १२ :

# पितर

'दादा।'

'हाँ बेटा।' चंदन बाबू ने बिस्तर बन्द बांधते-बांधते घूम कर अपने लड़के मदन की ओर देखकर कहा।



'कुछ नहीं।'

'नहीं, कुछ तो जरूर होगा। क्या बात है?'

'मेरे लिये सिगनल वाली गाड़ी लेते आना। लाओगे दादा?'

'सिगनल वाली?'

'सिगनल ऊपर नीचे न होते रहें तो मास्टर साहब कहते हैं गाड़ी लड़ जाती है।' मदन ने बताया।

'अच्छा। मगर यार बड़ी महंगी होती है। सुनो, बैटरी वाली मोटर कैसी रहेगी?'

'बैटरी वाली मोटर! सस्ती मिलती हैं?'

'हाँ।'

'अच्छा। काम चला लूंगा। मगर एक बात है?'

'वह क्या?'

'डायरी में लिख लो। साथ में उछलने वाला खरगोश, बोलने वाला बन्दर और हाँ, हाथ हिलाने वाला रीछ। उत्साह से मदन कहता रहा। चन्दन बाबू नोट करते रहे।

'हाँ अब ठीक है। नोट न किया तो फ़िर आकर कहोगे भूल गया बेटा।' मदन बोला।' चन्दन बाबू हंसे। दोनों की खुलकर हंसी सुनकर ही शायद उनकी पत्नी सोमती कमरे में आई। पिता पुत्र दोनों होलडोल पर बैठे हंस रहे थे। आते

उसी समय सेजू उठा और सेठजी के घर गया। सेठजी बैठकखाने में बैठे थे। सेजू को देखते ही दुःख प्रकट करते हुए बोले, 'तेरा बेटा मर गया, इसका मुझे बहुत दुःख है पर भगवान की मर्जी पर किसका बस चलता है? बन्दा तो उसके इशारे पर बनता-बिगड़ता है।'

'हाँ, सेठजी, भगवान के इशारे पर बन्दे बनते-बिगड़ते हैं और आपके इशारे पर इक्के?'

'क्या मतलब?'

'आपने इक्का नहीं दिया इसलिए मेरा बेटा मर गया।'

राम-राम मेरा इक्का खराब था।'

'आप इतने झूठ क्यों बोलते हैं? मैंने उसे सट्टे बाजार में देखा है।'

'तुझे विश्वास नहीं होता? मैं अपने बेटे की कसम खा कर कहता हूं कि उसकी धुरी टूट गई थी। मैंने उसी दम ठीक करवाया था।'

'यदि आप सच कहते हैं तो ठीक है' नहीं तो भगवान आपको अपने किए का दंड देगा।'

जब सेजू चला गया तो सेठजी बोले, क्यों मुनीम जी, कैसे टरकाया। अब तो कल 'सात' आ जाए तो सब आनन्द ही आनन्द!'

सात! सात!! सात!!!

सेठजी उस दिन खाना नहीं खा सके। रात को नींद में भी उन्हें चैन नहीं पड़ा! बार-बार कहते थे—सात—साँप का सात······· साँप का सात! सात! सात!! सात!!!

सवेरे तार की लाइन गड़बड़ हो जाने के कारण फीचर नहीं आ सका। सेठ जी पागल की तरह बैठक में चहलकदमी कर रहे थे। बार-बार उनकी नजर दरवाजे की ओर उठ जाती थी। वे उद्विग्न हो उठते थे।

बड़बड़ाते थे—साँप का सात!

एकाएक मुनीम आया। मुंह उदास। नेत्रों में पानी।

'क्या बात है मुनीमजी!'

'साँप का आठ!'

इस तरह मांगों और उलाहनों की छूटती फुवारों के बीच हंसी खुशी चंदन बाबू कलकत्ते रवाना हो रहे थे। जाते वक्त क्षण भर को पत्नी के सामने रुक कर उन्होंने इतना जरूर कहा।

'सोमती ! मैंने बचपन में वह सब कभी नहीं पाया जो मदन को मैं आज दे सकता हूं। उसे देकर सचमुच ऐसा लगता है मानों मैं खुद उसे पा रहा हूं ! रही जिन्दगी उसका क्या भरोसा आज है कल नहीं। आगे की भला कौन जानता है।'

फिर वह हंस कर चल दिये।

दूसरे रोज अखबारों में खबर छपी।

'रायबरेली के पास जायस स्टेशन के चार मील इधर रेल दुर्घटना।'

लिखा था बहुत लोग जख्मी और कई मौतें हो गईं। ऐसी दुर्घटनाएँ होती ही रहती है जिनकी सुर्खियाँ आम छपती ही रहती हैं। वैसे हर किसी के लिए खबरों की कुछ खास अहमियत नहीं रहती। इसलिये कुछ पढ़ते है कुछ यूं ही सरसरी तौर पर देख लेते हैं। अक्सर ऐसा भी होता है कि जिनका इन दुर्घटनाओं में से किसी एक के साथ खास सम्बन्ध हुआ वह देख कर भी जान तुरन्त नही पाते। ऐसा ही हुआ। दूसरे दिन मदन स्कूल में अपने साथी चन्दू से मिला।

दोनों की आपस में खूब घुटती थी। फौरन वह लिस्ट बड़े चाव से दोहराई गई जिसकी कलकत्ते से आने की प्रतीक्षा थी। पूरे विवरण के साथ।

'दादा को सब नोट करा दिया है।'

'डायरी मे ?'

'और क्या। नहीं तो कह देते आकर 'भूल गया बेटा'।'

'बोलने वाला बंदर।' –अपने में डूबे हुए चंदू बोला।

'हाथ हिलाने वाला रीछ और उछलने वाला खरगोश भी।'

'मैं तेरे घर आऊंगा मदन।' –ताली बजाकर चंदू ने खुशी जाहिर की।

'और सुन।'

'हां मदन'

'सिगनल वाली गाड़ी दनदनाती हुई आयेगी।'

'कांसे की थाली वजाकर।"

'कांसे की थाली वजाकर'

'दादी कहती हैं कांसे की थाली वजाने से पितर आते हैं।'

'आते हैं! सच्ची ?'

'पिता जी, मेरे पितर हैं। दादी ने वताया है।'

'मेरे पिता कौन हैं ?'

'तेरे दादा।'

'कांसे की थाली वजाकर बुला सकता है! सच्ची ?'

'हां हां।'

छुट्टी की घंटी वजी! वात आई गई हुई।

मदन के दादा को गये चार दिन हो गये।

दो दिन पहले दुर्घटना की खवर मिली। घर का वातावरण एकदम से वदल गया। सवकी आंखें रोते रोते सूजी हुई थीं। मदन की किसी को फिकर न थी। वहुत से लोग घर में आते जाते रहे। पर अव उससे न कोई वोलता न हंसता खेलता। सव जाकर 'मां' के वैठते। मां रोती आंसू पोंछती। आने वाले भी कोई कोई उस जैसा ही करते। काकी-दादी दिन रात तीन दिन से खाट पर पड़ी थीं। न खाती न पीती न पूजा-पाठ। मदन सव कुछ देखता हुआ दिन भर सव जगह चक्कर काटता रहता। किसी से कुछ पूछता भी तो कुछ वताते नहीं कोई टाल देता तो कोई रो देता। वेचारे को अपने दादा का ऐसे समय न होना वहुत अखर रहा था। सोचता जाने कव आयेंगे। घर में आते जाते गुमसुम लोग जरा अच्छे न लगते। वह उनसे कतरा कर घर में इधर से उधर डोला फिरता। कभी चुपचाप अपने दादा की मेज के पास खड़ा होता जहाँ वह उनकी मौजूदगी में खड़ा होकर उनको पन्ने पर पन्ने लिखते हुए देखा करता था। कुर्सी वैसे ही रखी थीं जिस पर घड़ी की हुई ओढ़ने की चादर पड़ी थी। कागज-पत्तर, दो तीन कलम, दांत खोदने की सींकें, आये हुए अखवार सव जैसे के तैसे ही रक्खे थे। एक वहीं नहीं थे! लगता अभी उठकर वाहर गये हैं! आते ही होंगे। जरा सी आहट पर चौंक-चौंक कर मदन देखता। हर वार कोई दूसरा ही होता।

सोचता—'जाने कव आयेंगे?'

तुम खराब हो। कहीं और चले गये, आ जाओ। रीछ मत लाना, बन्दर मत लाना, खरगोश मत लाना, सिगनल वाली गाड़ी भी मत लाना। मैं कुछ नहीं मांगूँगा! तुम चले आओ। फौरन! मां रोती है मैं रोता हूं.......

चन्दू कहता है तुम मेरे पितर हो! मैं तुमको बुलाने—(यहाँ पहुंच कर चिट्ठी एकाएक खत्म हो गई थी झन-झन-झन आवाज आ रही थी।

सोमती बगल वाले कमरे की ओर मुड़ी तो बढ़ाया हुआ कदम फिर अपनी जगह पर वापस लौट आया। दीवार पर उढ़कते हुए वहीं से उसने देखाः कमरे के अन्दर मदन अपने दादा की तस्वीरों के आगे जम कर बैठा हुआ कांसे की थाली बजा रहा था।

बीच बीच में क्षण भर को कभी दरवाज़े तो कभी खिड़की की ओर वह उत्सुक नज़र डाल लेता और फिर अपने काम में पूर्ववत् जुट जाता। व्यग्रता और भरपूर विश्वास ने उसकी आंखों में नखत जगा दिये थे।

बेटे का अनुसरण करते हुए सोमती ने भी पति के चित्र की ओर देखा। फोटो में पति की आंखों में झिलमिलाती फूटी पड़ती वहीं हंसी उसे दीखी जो मदन के संग नई सलाह करते समय रहती थी। लगा जैसे उसको अचानक बीच में आया देख अभी-अभी कुछ कहकर चुप हो गये हों। आगे वह और न देख पाई।

उसे अब सिर्फ मदन का कुछ-कुछ आभास ही मिल रहा था जो पहले की तरह किसी हठी पुजारी-सा अपने पितर का आह्वान करता डटा था। वह ज्यादा देर खड़ी न रह सकी, दीवार का सहारा ले वहाँ उसी जगह लड़खड़ाकर बैठ गई।

कानों में कांसे की थाली की झंकार अविरल सुनाई पड़ती रहीं! रात के सन्नाटे में आवाज़ अन्दर गूंजकर उठती हुई बाहर दूर-दूर तक फैलती जा रही थी। फैलती रही।

मदन के दादा सुन रहे थे या कि नहीं!

कौन जाने?

# श्री यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र'

राजस्थान के तरुण कथाकार एवं उपन्यासकार श्री यादवेन्द्र-शर्मा 'चन्द्र' का नाम हिन्दी संसार में सुविदित हो चुका है। लगभग एक दर्जन उपन्यास और डेढ़ सौ से ऊपर कहानियाँ, आप अब तक लिख चुके हैं। उनके 'सन्यासी और सुन्दरी' 'दिया जला दिया बुझा' तथा 'खम्मा अन्न-दाता' आदि उपन्यास तो गुजराती, मराठी और उर्दू में भी अनुवादित हो चुके हैं। राजस्थानी सामन्ती जीवन का चित्रण करने में तो वे सिद्धहस्त हैं। उनके कथा-साहित्य के विषय अधिकांशतः राजस्थान के जन-जीवन, इतिहास और संस्कृति से ही सम्बन्धित हैं।



'साँप का सात' नामक कहानी में उन्होंने राजस्थान में प्रचलित अन्धविश्वासों और पूंजीवादी मनोवृत्ति पर तीखा व्यंग्य किया है।

—सम्पादक

: १३ :

# साँप का सात

संध्या का धुंधलापन तालाव की घनी-घनी बेर की झाड़ियों में सांय-सांय कर रहा है जैसे वह यहाँ से जाना नहीं चाहता। और अन्धेरा, मृत्यु-सा महाबली अन्धेरा, पूरव की ओर से अपने विशाल पंख फैलाता हुआ शीघ्रता से आ रहा है। प्रकाश क्रन्दन कर रहा है। करता है तो करता है, पर अन्धेरा मृत्यु है और मृत्यु अपने समय से नहीं टलती। बेर खाने वाले लड़के जल्दी-जल्दी तालाव से बाहर निकल रहे हैं। 'अरे चुन्नो, अरे बोंड़ा, अरे झिटिया, ओ टट्टूड़ा' की आवाजें जोर-जोर से इधर-उधर आ रही हैं।

'चून्नी ओ चुन्नो!' नेभा कहता है।

'क्या है?'

'जल्दी-जल्दी चल, जानता नहीं, संझा पड़ी, इन बोटियों में भूत आ जाते हैं।'

दोनों भागते हैं।

'अरे उस पीपल के पेड़ के नीचे मत जाना टट्टूड़ा।' बोंड़ा जोर से चिल्लाया। उसकी आंखों में भय नाच उठा।

'क्यों?' टट्टूड़ा ने पूछा।

'इस पेड़ में मावरिणयांजी है। संझा समय जो इसके नीचे से जाता है, उसको देवी लंगड़ा बना देती है।'

टट्टूड़े की आंखों में भय नाचा और वह एकदम सरपट भाग गया। धीरे-धीरे सभी लड़के साले की होली, बारह गुवाड़, दम्भाणियों के चौक व आस-पास के कई मोहल्लों की ओर चले गए।

लुहारिन रूसो का बेटा अपने साथियों के साथ आँख मिचौनी खेल रहा था। बच्चों का शोरगुल साफ सुनाई पड़ रहा था।

उसकी चिल्लाहट सुन कर सारे लुहार इकट्ठे हो गए। एक ने कहा, इसे सीधे वर्कशाप के पास झाड़गरों (मन्त्रों से विष को ठीक करने वाले) के पास ले चलो, देर करना ठीक नहीं है।'

एक युवक साइकिल पर गुजर रहा था। उसने प्रस्ताव रखा, 'इस बच्चे को अस्पताल ले चलो, इन झाड़ों में कुछ नहीं रखा है।'

समीप रहते हैं एक पंडितजी। दौड़कर आए और बोले, 'इन छोकरों की बातों में आना मत, भाग कर झाड़गरजी के पास ले चलो!'

बूढ़ा लुहार हरखा चीख कर बोला, 'कुछ भी करो जल्दी करो पर जल्दी करो, जहर तो नस-नस में बढ़ रहा है। आप फालतू बातें करते रहिए और यह नन्हीं जान तड़प कर मर जाएगी!'

'कहाँ है वर्कशाप? कितनी दूर है?' आँसू भरी दृष्टि भीड़ पर डालती हुई रूसी बोली। उसका मुख सफेद पड़ गया था।

'यही तीन-चार मील।'

'गाड़ी ले आओ नहीं तो बचना मुश्किल है।

'नहीं-नहीं काँपते स्वर में रूसी बोली, ऐसा न कहो, यह मेरा एक ही बेटा है। मैं अभी सेठजी का इक्का माँग कर लाती हूं। मैं बरसों से सेठजी के घर के काम करती आ रही हूं।'

रूसी भाग कर सेठ रामगोपाल के यहाँ गई। रामगोपाल अपने मुनीम से कोई सलाह-मशविरा कर रहे थे। रूसी की दर्द में डूबी आवाज सुन कर वे सावधान हुए। चौकन्ने होकर उन्होंने पूछा, 'कौन है?'

'रूसी, आपकी लुहारिन?'

'वह इक्का माँगने आई है। उसके बेटे को साँप ने काट लिया है।' मुनीम ने कहा।

'सांप ने?' सेठजी गम्भीर हो गये और बाहर आये। द्रवित स्वर में दुख प्रकट करते हुए वे बोले, 'यह तो बहुत बुरा हो गया, राम, राम! मुनीम जी, कोचवानजी को बुलाओ।'

रूसी का पति सेजू अभी तक नहीं लौटा था। कभी-कभी चिमटे, कढ़ाई और खुरपे बेच कर वह सट्टा बाजार में चला जाता है, जहाँ एक बर्तन बनाने वाले के यहाँ वह रात को बारह बजे तक गर्म लोहे पर हथौड़ा चलाया करता है, जिससे उसे एक रुपया और अधिक मिल जाता है। यह काम नियमित नहीं है, कभी-कभार।

रात को लगभग ११ बजे वह दिन की अपनी सारी कमाई लेकर चला। उसने छन्नू के लिए लड्डू लिए और रूसी के लिए भुने हुए चने। रास्ते में एक वेश्या का गाना हो रहा था, उसे वह सुनने लगा। किसी रईस ब्राह्मण के लड़का हुआ था। खुशी का मौका था। थका-हारा सेजू भी बैठ गया। रात दो बजे गाना खत्म हुआ, तो वह चला।

अपनी बस्ती से थोड़ी दूर उसने गुनगुनाना शुरू किया। वेश्या ने जो गाया था वही गीत। रात भर रहियो........

रूसी ने सेजू की आवाज पहचान ली। वह मस्ती में गाता हुआ आ रहा है उसे क्या मालुम कि उसके जिगर का टुकड़ा मर गया है। 'नहीं' मैं उसे रोक दूंगी, गाना अच्छा नहीं लगेगा, बस्ती वाले क्या कहेंगे ?'

वह भागी।

गहरा सन्नाटा था।

'छन्नू के बाप चुप हो जाओ, मत गाओ, आज मत गाओ।'

'क्यों ? आज मैं जरूर गाऊँगा। आज मैं तेरे लिए भुने चने लाया हूं। और छन्नू के लिए लड्डू ! जब मैं दोहरा पैसा कमाता हूं। तब जरूर गाता हूं। आज भी गाऊँगा।

'नहीं-नहीं आज मत गाना !'

'लेकिन क्यों ?'

'अपना-छन्नू....!'

'क्या हुआ ?....' कंठ में शब्द अटक कर रह गए। वह छनिये की मौत की खबर सेजू को न सुना सकी। उसका हाथ पकड़ कर वह उसे खींच लाई। घोर अन्धकार में सेजू वास्तविक स्थिति को नहीं समझ सका।

'सात का भाव भी बहुत ऊंचा था, तीन का ।-'

इसकी चिन्ता न करो, सेठानी का जेवर है। मेरा यह सपना झूठा नहीं हो सकता । साँप का सात, बस यही तो पकड़ है सपनों की ?'

'सात हजार चले जाएंगे, यदि सात नहीं आया तो ?'

'आएगा' मैं कहता हूं जरूर आएगा'

इधर लगातार सेठ सट्टे में घाटा दे रहा था । कोई फीचर उसके पक्ष में नही पड़ रहा था । आर्थिक स्थिति गिरते-गिरते उनका हाथ बीवी के जेवर पर चलने लगा । रुख उल्टा पड़ने में भी वे एक आशा में जी रहे थे । आज नही तो कल; कल नहीं तो परसों जरूर 'फीचर' आएगा और वे सारा घाटा पूरा कर लेंगे ।

मुनीम ने भी हाँ भरली । वह बात को बदल कर बोला, 'कोचवान बड़ा समझदार है अपना, बस एक ही इशारे में समझ गया ।'

आखिर मेरा कोचवान है । लेकिन मैंने भी कैसी चाल चली ? कितना बढ़िया उत्तर दिया । यदि मैं उसे इक्का दे देता तो तुम्हें बाजार कैसे भेजता ?'

मुनीमजी उस दिन सेठजी के यहाँ ही सो गये ।

× × × ×

सवेरे छनिया की लाश आग की गोद में सुला दी गई जो राख की ढ़ेर बन गई ।

दोपहर को रूसी सेजू से कह रही थी, 'यदि सेठजी का इक्का खराब नही होता तो अपना छनिया नहीं मरता । झाड़गरजी ने कहा—'थोड़ी देर हो गई ।'

'सेठजी का इक्का बिल्कुल ठीक था, वह बाजार में खड़ा था । मैंने उसे अपनी आंखों से देखा था ।'

'नही उसकी धुरी टूट गई थी ।'

'क्या कहती हो छन्नू की मां·······!'

'तो उसने मुझे टाल दिया ? ओ निरदयी, क्या तेरा इक्का घिस जाता ? हे भगवान कैसा नीच आदमी है !'

नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। सांप का सात ही आएगा, सांप का आठ नहीं हो सकता। पूरा सात हजार का सौदा है। मुनीम जी एक बार बाजार और जाकर पूछ आओ।........सांप का सात........?"

'आठ का फीचर खुला है। मैं कसम खाकर कहता हूं, आठ।'

'कसम? अरे मैंने भी तो झूठी कसम खाई थी। तुम भी झूठी कसम खा सकते हो। बोलो, सात ही आया न?'

'नही!'

'मुनीमजी!' सेठ जी जोर से चिल्लाए। उनकी आकृति बदल गई, विकृत हो गई। मुनीम जी डर गए। उठे। भागने की चेष्टा करने लगे। सेठजी ने पकड़ लिया। बोले, 'कहो, साँप का सात ही आया न?'

'हाँ-हाँ!'

सेठजी हँस पड़े और जोर से चिल्लाकर बोले, 'सेठानीजी....सेठानीजी, साँप का सात आ गया, मेरा सपना झूठा नहीं हो सकता, नहीं हो सकता। नर्गिस का नौ और साँप का सात!'

हवेली के सारे आदमी इकट्ठे हो गए।

डाक्टर को बुलाया गया। उसने कहा—'सेठजी पागल हो गए।'

'सेठजी पागल हो गए!' सेजू ने रूसी से कहा।

'जैसा किया, वैसा पाया।'

उस दिन के बाद कभी-कभार गलियों में सेठ रामगोपाल 'साँप का सात' कहता हुआ मिल जाता है। जो लोग देखते हैं, वे कहते है—इसने रूसी का बच्चा छीना और भगवान ने इसको पागल कर दिया। यहाँ के पाप यही पर भोगने पड़ते हैं। यहीं पर नरक है और यहीं पर स्वर्ग! भगवान किसी का बुरा न कराए और फिर सट्टा अच्छे-अच्छे को पागल बना देता है।